









	reter in the enforth	41
ŧ	को गाँउ कर	१
13	अल्पमार्ग स्थापन	10
٤.	यार्ग नगरतार	ಚಿತ
ξ.	यमृत का अनियर	\$ 3
ę o	वर्ग त्यान	११०
११.	कतिपय प्रध्न	१४३



से हम उसे अब प्रकाशित करने में सफत हुए है। हम आक्षी बाटीबालजी साक की इस उदारता एवं उनको साहित्य सेवा के प्रति आभारी है व गुरुदेव से विनम्न उनके दीवीयुं की कामना करते हुए अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हैं।

इस प्रपूर्व पुरतक का हिन्दी प्रनुवाद प्रकाशित करने की श्राज्ञा सहर्प श्री मफतलालजी संघवी ने प्रदान की, प्रन हम उनके भी प्रत्यत श्राभारी है।

नमस्कार महामत्र के गूढाथ को समक्षने एवा उनको साधना के लिए यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध हो तथा पाठकगरा इससे लाभ उठावे यही ग्रमिलाण है।

चांदमल सोपार्गी

ग्रप्रेल ११, १६७६

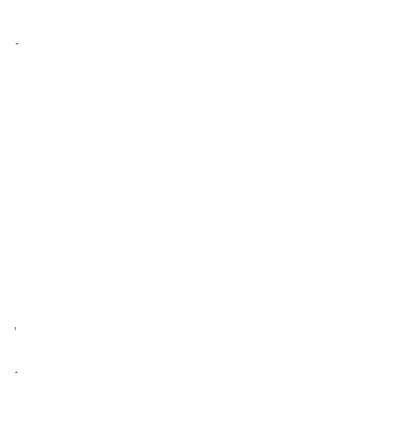
मत्री श्री जिनदत्तमूरि मण्डल, दादावाडी, श्रजमेर

साहिए—'शाता उपयुक्ता' जानकार पीर उपयोग नाते का नमस्कार भाव नमस्कार है। नमस्कार को 'पार्थ नमस्कार' वनाने के लिए इस प्रतक में जिस पर्तु के जान का पीर उस जान के सतत उपयोग का वर्मन किया गया है, वह जान मुख्यत नमस्यार करने बाने जीय की भारा निर्मावन योग्या योग्यता का है। 'प्रथम योग्य ननो प्रोर फिर वस्तु प्राप्त न रो' नीतिकार भी कहते हैं कि—'रामुद्र उन्छा गही करना फिर भी योग्य होने से पानी से अवस्य भरा रहता है, इस्तिए प्रारमा को योग्य वनाग्रोग तो सम्पत्तिया अवस्य प्राप्त होगी।

योग्यता प्राप्त करने के लिए प्रयोग्यता को दूर करना चाहिए। प्रपायता टाले विना पात्रता प्रगट नही हो मफती। जीव की मूल प्रपायता अर्थात् अर्थोग्यता क्या है श्रीर मूल पात्रता प्रयान् योग्यता अर्थात् अर्थोग्यता को हालने के लिए और योग्यता प्रगट करने की किया के लिए प्रयत्न हो ही कहाँ से? जीव की मूल प्रयोग्यता को शास्त्रकार भगवातों ने 'सहजमता' से सम्योधित किया है—पू श्री हरिभद्रसूरीश्वरजी महाराज ने उसे 'भवमाता-ससार की जननी' की उपमा दी है। मूल नष्ट न हो वहा तक शाखा, पत्तिया नष्ट करने का प्रयत्न व्ययं जाता है, वैसे भववृक्ष का मूल जो सहजमल—कर्म के सम्पर्क मे आने की जीव की श्रनादि काल की सहज योग्यता कम न हो, उसे नष्ट

First deserve and then desire

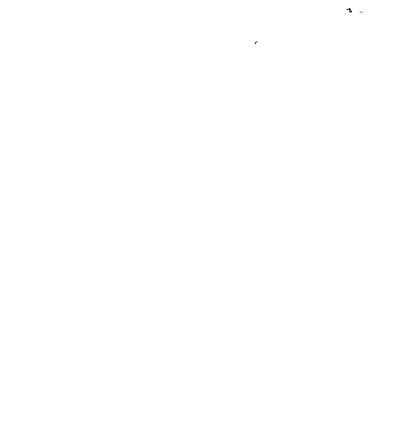
२. नो दन्वानियतामेति न चामोभिनं पूर्यते । श्रात्मा तु पात्रता नेय , पात्रमायान्ति सपदः ॥ ११ ॥ धर्मीवदु—टीका



गमन-योग्यता को प्रगट करना ग्रीर कर्म के सम्पर्क मे श्राने की ग्रनादि श्रयोग्यता दूर करना है।

श्री पंचमूत्रकार श्री चिरन्तनाचार्य ग्रीर उन्ही के जब्दो का विस्तार करने वाले टीकाकार श्री हिरभद्रमूरि ग्राटि महापुरुष थी अरिहतादि परमेष्ठियों के अवलम्बन से उस कार्य की सिद्धि सरलता से हो मकती है, ऐसा स्पष्ट रूप मे बनाते है। उनश्री के वचनो का सक्षिप्त मार जानने के लिए उस पुस्तक की प्रस्तावना के बाद कितने ही शास्त्रों के पाठ उद्घृत किये गये है। सद्गुरु की निष्ठा में उनके चितन-मनन से सहदय जिज्ञामु पाठको को यह वस्तु स्पष्ट हो जायगी कि जीव को कर्मका ववन है ग्रीर उसे उसमें से मुक्त होना है। यह कर्मववन श्रकस्मात नहीं है किंतु श्रपनी योग्यना के कारण ही है। इस योग्यता को 'सहजमल' बाद से सम्बोधिन किया है। उनमें से मुक्त होने की भी जीव की योग्यता है। उस योग्यता की 'तथाभव्यत्व' शब्द मे सम्बोधित किया है। जिन जिन कारण सामग्रियों को प्राप्त कर भव्यत्व की परिपक्तता हो उसे 'तथा भव्यत्व' कहते है । श्री श्रिरित्रनादि परमेष्ठियो के ग्र लंबन से यह योग्यता परिपवव होती है। श्रीर जीव मुक्ति सुख का श्रिवकारी बनता है। इस प्रकार के ज्ञान महित उपयोगपूर्वक का नमस्कार ग्रपना कार्य श्रवश्य सिद्ध करना है, इमलिए वह

१. भव्यत्वनाम 'मिद्धिगमनयोग्यत्वमनादिपारिणामिको मात्र । तथाभव्यत्वमिति विशिष्टमेतत् । कालादि भेदेनात्मना बीज-गिद्धभावात् । आदिणव्यात् गालनियति वर्मपुरुषकारपरिष्यद्वः माव्यव्याविकत्पत्वात् ।



## प्रस्तावना

पर के प्रति का तीज होत गह सपने पनि गहरे राग ही जबरदस्त प्रतितिया है।

अपने प्रति गहरे राग ने प्रेरित जीन जो िनार करता है, जो वचन बोलता है श्रीर जो व्यवहार करता है उनके कारण कर्म के सम्पर्क में स्राता है।

कर्म के सम्पर्क में श्राने की जीव की योग्यता को शास्त्रीय परिभाषा में 'श्रनादिकमंसंतानवदत्व' कहा जाता है।

'श्रनादिकर्मसंतानबद्धत्व' श्रयीत् कर्म के गम्पर्क में आने की श्रनादिकालीन योग्यता ।

इस योग्यता का दूसरा नाम है 'सहजमल'।

मानव के समस्त विचारप्रदेश पर सहजमल की मजबूत पकड़ रहती है, वहा तक वह श्रपूर्णता श्रोर अंतरायों के बीन गडवड़ाता रहता है। चार गतियों में रखड़ता रहता है।

कर्म के सम्पर्क में श्राने की सहज योग्यता के साथ साथ जीव में एक दूसरी सहज योग्यता भी है। उसे शास्त्रीय परिभाषा में 'मुक्तिगमनयोग्यत्व' कहते है।

'मुक्तिगमनयोग्यत्व' श्रर्थात् मोक्ष मे जाने की जीव की योग्यता।

उस योग्यता को सीधी सादी भाषा में 'मन्यत्वभाव कहा जाता है।

सहजमल का हास हो की की जन्मानाव का विकास होता है।



शी नवकार के साथ विश्विनिष्ठा क्या का सम्यय पञ्चाय के साथ सम्यय करने में परिस्पानता है। विश्वित अनुवा का 'सिद्धभाव' फोर श्रा नवकार के राजा के तीय वादिक राज में कोई सनभेद नहीं है।

'सर्वजीवहिनकरक्षमता' यह सिद्धभाव का स्याभाविक प्रभाव है।

'सर्वपापप्रणाशकता' यह श्री नवकार का मूलभूत स्वभाव है।

श्री नवकार की भावपूर्वक की गई ग्राराघना के प्रभाव से जो क्षयोपयम होता है उससे सिद्धभाव का ग्राशिक किन्तु स्पष्ट अनुभव होता है।

प्रमुजी के भावों के माय के मम्बद्य का श्री नवकार यह



त्रिक्षित्र विश्वास्त क्षेत्र के क्षेत्र कर्ष त्रिक्षित्र क्षेत्र क्षेत्र क्षेत्र के स्वति क्षेत्र क्

पशुक्ता का सम्मरमा, भाषार का विषयणा व पात है। सहजसन के द्वासान्य तासर का तकार का भाग परिणाम में में पर्य होता जाता है पैने टीमें कामे-मिहिस क्यात प्राची मी छता का दर्शन होता है।

ं 'पोद्धे' प्रभुक्तपा का दर्शन होना यानी भूतकता के उनके प्रमीम उपकारों का हार्विक संस्मारमा होना ।

'श्रामे' गुपा का दर्शन होना मानी भित्तिम के उनके श्रमन उपकारों का मनोट संवेदन होना ।

श्रदूर्व निष्ठ। के सिवाय श्रपूर्व नमस्कार संगव नहीं ।

स्रपूर्व निष्ठा तब ही सभव होगी जब प्रमु की कृपा की श्रचित्य यक्ति होने की हकीकत के प्रति हदय में जरा भी शका न होगी।

इस शंका को जननी भी सहजमल है।

श्री श्रिरहंत का नमस्कार इस शका श्रीर उसकी माता-स्वरूप सहजमल का मूल से नाश करता है। श्रीर उसके वाद श्री सिद्धों की सहज कृपा का सचोट अनुभव साधक के इदयस्य होता है।



श्रात्मभाव के सहज प्रभाव को स्वीकार किए विना प्रभु को स्मरण करने की यथार्थ पात्रता नहीं प्रगट होती उमका निरूपण है।

तीसरे विभाग मे 'ग्रपूर्व नमस्कार' यानी वया, इसकी स्पप्ता करता है।

चीथे विभाग में चित्त को 'ग्रमृत का ग्रिमिपेक' करनेवालें मंत्राविराज श्री नवकार को ग्रपनी समग्रता का ग्रिमिपेक करने सम्बद्यी वाते हैं।

पांचवा विभाग 'घर्म घ्यान' के विषय में है।

छटे विभाग में मंत्राधिराज श्री नवकार की साधना की स्पर्श करते कितने ही प्रश्नो की स्पष्टता है।

यह पुन्तक मैंने ही लिखों है ऐसा तो मैं म्राज म्रथना कालातर में भी नहीं कह सकता नयों कि देव-गुरु की कृपा के प्रभाव सिवाय कोई भी व्यक्ति सिर्फ श्रपने प्रयत्न से कोई शुभ कार्य कर सकता ही ऐसा मैं नहीं मानता, यह मानने के पीछे मुख्य कारण यह है कि मानव के श्रदृष्ट छपर प्रभुत्व मानव के प्रयत्न का नहीं, परन्तु देवाधिदेव के सर्वजीवहितविषयक सर्वोच्च भाव का होता है।

मानव के परिएाम पर सहजमल का प्रभुत्व कम होता जाता है यानो श्रपने को श्रपनी श्रह्मता का ग्रीर श्री पंचपरमेष्ठि भगवातों की महानता का स्पष्ट दर्शन होने लगता है।

इस दर्शन के प्रभाव से प्रगट होती सवेदना उसे यही कहती है कि 'यदि श्रो पचपरमेष्टि भगवन्त एक समय भी ग्रात्मभाव की रमणता के वजाय प्रमाद का सेवन करने को प्रेरित ही तो उस जगत् का श्रस्तित्व भी नहीं रहे।

दुष्कृतेष्विह्यसभवगतेषु मर्ता वासं चन्तिमासा परमाशिक्षी। त्तया निवेदनाप्रतिपत्तिदु रस्त गर्हा । 'सपतिह्तीयं समीनु स्माप-नयने,' इति फर्राव्या । तथा ३ 'गुग्रतस्य' गतिरिके नियतभादिनोऽपंत्रभावतिष्येः परकृतानुमोदनर्पस्यारेगनः महदेतत्रुद्वालाशयनिवंधनमिति परभावनीयम् । 'कृतकारिता-नुमतिभेदभिन्ने हि पुण्यपापे' ग्रेभिस्तत्त्याम्वाभाव्यात्माध्य-च्याचिवत् तथाभव्यत्वं परिपाच्यते, इति । यतः श्रेवमतः यस्मादुकतवद्यिषृततत्त्वसिद्धिः, 'श्रतः' श्रस्मात्कार्रणात्कर्तं व्यं 'इद' वक्ष्यमाणं 'भवितुकामेन' मोक्षायिना भव्यसत्त्वेन, कर्य कर्त्तं व्यम् ? इत्याह- 'सदा' सर्वकालं 'सुप्रणिघानं' शोभनेन प्रिणिघानेन्, नात्र कालो नियम्यते किंतु सुप्रिणिघानिर्वित । यदा यदा क्रियते, तदा तदा सुप्रित्यानं कर्त्तव्यमिन्यर्थः। मुप्रिंगिघानस्य फलिसद्धौ प्रघानाङ्गत्वात् । उकतं च—

"प्रिश्चिमकृत कर्म, मतं तीव्रविषाकवत् । सानुवन्धत्विनयमाच्छुभांशाच्चेतदेव तत्" इत्थंचेतहरुगीकर्तव्यम् ?
इत्याह— कर्राव्यमिदं, 'मूयो मूय.' पुन. पुन. 'सकलेक्षे' सित
तीव्ररागादिसवेदनरूपेऽरतावुत्पन्नायामिति यावत् । तथा
"त्रिकाल" त्रिसन्ध्यं कर्राव्यमिदम्, श्रसंकलेक्षे प्रकृत्या कालागमने सित्।

दशपूर्वघर श्रोचिरंतनाचार्यं कृत- पंचसूत्र-प्रथमसूशे ( मूल तथा टीका ) टीकाकार- सुविहित शिरोमिण श्रोहरिभद्रसूरिमहाराज

ल ल रे ल र १०४८ १००० र प्राप्ति प्राप्ति । ल . १ १९ १ १ १ १ १००५ स्थित । प्राप्ति । १८० म

## afterfamen mår en sier och en ett sier ett sier

दिविनोत्त्रम्य गाम्य पान्य वे १८० व्यवस्थात् । व्यवस्थितः विकास गोम्य पान्य वे १८० व्यक्ति । वृश्चितः विकास कर्ममधीपयीय्यासम्य , १८० व्यक्ति व्यक्ति व्यक्ति वृश्चितः वृश्चितः स्वामी मूचहेत् , यस्मयोगपीयात् सा चार्यस्था व्यक्ति प्रतिविधिक प्रतिविधिक स्वामी विकास स्वामी विवधित ।

अध्यात्मोपनिषद् त्रियायोग शुद्धि अधिकार जीवस्य तण्डुतस्येय, मतं सहजमप्यतम् । नद्रयत्येय न संदेहस्तम्माद्रुद्यमयान् भय ॥२१॥ श्रविद्या च विद्दक्षा च, भयबोजं च वासना । सहजं च मलं चेति, पर्याया, कर्मणः स्मृता. ॥२३॥ पू. उपा० श्रीयशोविजयजी गरिंगवर

हम भीतर प्रवेश करने को तंयार हो जाते हैं। जिनकों हैं नमरकार करेंगे उन्हें हम प्राप्ते भीतर प्राते नहीं रोगेंगे वर हम उन्हें थाने के लिए निमित्रत करेंगे। उसलिए उस सूत्रः वास्तविकता है ग्राहकता। नमन करना प्रार्थान् सिर्फ मस्तकः फुकाना नहीं वरन् मन को, मन के विचारों को, मन की उच्छा को तथा मन की तृष्णायों को भी निमत करना। इस नमस्क मत्र के पांच चरण है। प्रथम चरण है 'नमो श्ररिहतार प्रथात् श्ररिहतों को नमस्कार। श्ररिहंत का श्रथं है जिसके स शत्रु नष्ट हो गए हैं, श्रव ऐमा कुछ नहीं रहा जिनसे लडना है हो यानी कोष, काम, लोभ, श्रहकार गुछ भी नहीं रहा।

दूसरा चरण है 'नमो सिद्धाणं' श्रयीत् सिद्धों को नमस्कार सिद्ध का मतलव है जिसने सब कुछ प्राप्त कर लिया है। वै श्रिरहत व सिद्ध में कोई फर्क नहीं है। सिद्ध भी वहों पहुँचा है जहा श्रिरहंत।

तीसरा चरण है 'नमो प्रायरियागां' अर्थात आचार्यो व नमस्कार विश्वाचार्य वह होता है जिसका आचरण तर ज्ञान एक है। इसका मतलव यह है कि हम उनको नमस्की करें जिनका आचरण और ज्ञान अभिन्न है।

चीया चरण है 'नमो उवज्मायाणं' ग्रयीत् उपाध्यायो व नमस्कार । उपाध्याय ग्राचरण ही नही करता वरन् उपदेश भी देता है । जैसा वह जानता है वैसा वह वताता भी है । इ प्रकार उपाध्याय हमें ज्ञान व ग्राचरण का भान कराते हैं .

पाचवा चरण है 'नमो लोए सव्वं साहूग्।' अर्थात् लोक सर्व साधुयो को नमस्कार। यह एक सावारण नमस्कार यानी लोक मे जो भी साधु है उन सबको नमस्कार। लो



इन प्रकार नवकार के प्रथम दो पदो में सामर्थ्यगोग की नमस्कार है क्यों कि ऋरिहत तथा निद्धों में अनत सामर्थ्य बीर प्रकट हुआ है। बाद के तीन पदों में शास्त्रयोग की नमस्कार है क्यों कि आचार्य, उपाध्याय तथा मानु में बचनानुष्ठान निहिंग है। अतिम चार पदों में इच्छा योग को नमस्कार है क्यों कि उनमें नमस्कार का फल बताया है। फल सुनने से नमस्कार में प्रकृत होने को इच्हा होनी है।

ज्ञानपूर्वक, श्रद्धापूर्वक तथा तक्ष्यपूर्वक प्रमाद छो कर गिन् ननस्तार महाभा की पारायना की जाय तो वह पनि प नायर बना। है। इसके स्थान से एवं जाप से जिल्ले में भीति स्वरित को ते हैं।

*ग्निमर,* \* १,१७५

चांदमत सोवाणी



ि ार प्रदेशान राजे के जगभूरता, अने नमने से र<sup>ाये</sup> स्थयमाना ने भे ते,परमार्थरिकता रम् हो है है।

र सर्व को प्रमाग प्रवी ( यहजमत हो प्रमाग । सहजमत को प्रमाग प्रवीत् भृत्यु को जिलानेतानी योग्यता को प्रमाग ।

सहजमल को प्रणाम अर्थात् भव की प्रति भयानक जेल में प्रवेश करने की शक्ति को प्रणाम ।

महजमल को प्रणाम भ्रयात सर्वजीवहितविषयक भाव का तिरस्कार।



भ राजभाव सर्पात् जीत की मुक्तिसमन तीरणता।

सहजमल के प्रभाव से जीव की संसार में रहने की <sup>पावती</sup> बढ़तो है, मोध में जाने की पातता तिरोहित होती है <sup>7</sup>

सहजमत अर्थीत् ससार का नील, समरत पापी नी उत्पत्ति स्थान ।

गहजमन का प्रभान नक्षामा है जीवस्य का होग ।

जीवत्व से द्वेष करना जीय का स्वभाव नहीं है, पर्छ सहजमल का जीताजागता प्रभाव है।

जेसा सहजमल का स्टभाव है वेसी ही उसकी भाषा है।

वह गुग्गी ग्रात्मात्रों के श्रवगुग्ग वताता है। उपकार की वदला श्रपकार से देता है। गुरुजनों की निन्दा करता है। व्यक्ति के सामान्य दोप को श्रागे कर उसके विधिष्ट गुंगों की उकने में श्रानद मानता है। सर्वजीविहतकर धर्मकार्यों की श्रनुमोदना वह नहीं कर सकता। श्रठारह पापस्थानों की श्रतिष्ठा वढाने के लिए वह रात-दिन श्रथक परिश्रम करता है।

सहजम्ल की भाषा का ग्रभ्यास करने से जीव के हें प के महापाप से बचा जा सकता है।

यह किस तरह ?

उदाहरणार्थ-अपने को एक सज्जन मिले जिन्हे पारमाधिक अवृत्ति करने के वजाय ऐहिक अवृत्ति में ग्रधिक रस है। उस रस के कारण वह भाई परमार्थपरायण आत्मात्रों की निदा करने के लिए प्रेरिते होता है। उसकी वह निदा-यदि हम सहंजमल की भाषा ठीक ठीक जानते हो तो-हमें उसके प्रति हुभीवना के परिणाम से श्रलग रसे श्रीर सहजमेल की भयंकरता



हेर्फात एस का रात्ता रात्ता वा स्थान है। नामानुबन्धे वा स्थान वा सम्बद्धी नामानुबन्धे

्षाण करने हा योग्या। का सभाव, स्ववस्त है <sup>हिन्दी</sup> पैस हास है।

'नमो प्ररिहतासा' पर के 'परि' योर '८व' शाद में सह वर्ष के समूतीच्छेर का प्रतित्य धमता है ।

सहजमल जीव मात्र का सामान्य भव् है ।

श्रथीत् जो श्रात्मा उसका सूत्र से उच्हें । तर सकता है वह जगत् के समस्त जीवों के परम मित्र के परमणद को श्राप्त करता है।

ग्रपने शत्रु के शत्रु को 'मित्र' गिनने मे मसारी जीव शायर ही हिचकिचाता है, जबकि यहा तो श्रात्म गाव के भार शर् को नाश करने वारो परम वीर्यवत ग्रात्मा की बात है। ग्रथीं



द्रव्य-मल का नाम मुनते ही सपने मन को निरद्धन प्रत्याचात का पनुभव होता है जबति भाव-मण का भावपूर्व स्रादर करने की उसकी स्रनादि काल की कुटेव की तर्फ स्वर्ग संध्य भी भाग्य ने ही जाता है।

जब कि श्री नवकार के साथ मन लगाना, भव्यस्व<sup>माव है</sup> साथ मन को जोउने मे परि**ग्**गमता है ।

भव्यत्वभाव प्रयीत् प्रात्मभाव ।

श्रात्मनाय के साथ सम्बंध होना गानि परिणाम ग्रा<sup>त्म</sup> भाव सभर होना । श्रात्मभावसभर यह परिणाम का प<sup>विश्</sup> प्रकाश, वाणी श्रीर ब्यवहार दोनो मे होता है ।

महजमल जीवत्व के द्वेप के परिगाम जगाता है उमी तरह भन्यत्वभाव जीव के युद्ध परिगाम जगाता है।

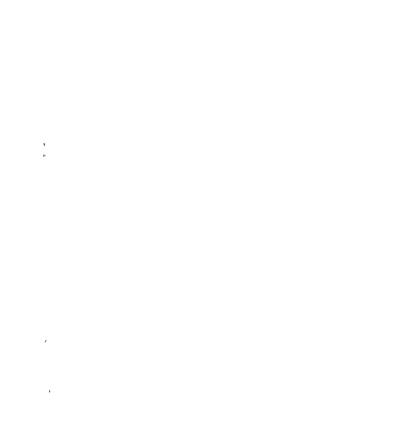
"शिवमस्तु सर्वजगत." यह भव्यत्वभाव की भाषा है।

जिस विचार, वागो और व्यवहार द्वारा पर के हिंग का पक्ष हो उसके मूल में भव्यत्वभाव होता ही हैं। वयंकि परहितपरायगुता यही उसका घमें है।

श्रो नवकार के साय का सम्बंध, सर्वजीवहितपरायणता के साथ सम्बंध है।

'नमो ,श्ररिहलाए।' पद का जाप परहितपरायए।ता, की पराकाष्टा पर पहुँचे हुए परमात्मा के भाव के लिए विलाप है।

परमात्मा के सर्वोच्च भाव से श्री नवकार श्रलंग नहीं है । परमात्मा के सर्वोच्च भाव से श्री नवकार श्रलंग नहीं है । नमो श्ररिहताएा पद के साथ श्रपनी समग्रता का सम्ब<sup>ध</sup> श्रपने को परिएाम की उस भूमिका पर ले जाता है, जहां स्थि<sup>र</sup>



तो गया परन्तु उनके पेर गी पादुका के प्रति भी उतना ही स्नैह उमडेगा जितना उनके नाम के प्रति होगा ।

जिनके साथ श्रपना सम्बन्ध होता है, उनके श्रग की किसी भी वस्तु के प्रति श्रपना श्राकर्पण रहेगा ही ।

श्रर्थात् श्री नवकार के श्राराघक, जिन प्रतिमा को देराते ही स्वय श्री जिनराज को देखे श्रीर श्रानन्द का श्रनुभव करें वैसा ही श्रानन्द का श्रनुभव करता है।

भन्यत्वभाव खुलता है, यानि ऐसा श्रनुभव हकीकत रूप वन जाता है।

गोला फपड़ा सूखता है अर्थात् वह हवा में फरफराना गुरू करता है वैसे हो सहजमल का ह्नास होता है यानि भव्यत्वभाव स्पष्ट रूप से चलता फिरता मालूम होता है।

भन्यत्वभाव प्रगट हो यानि समस्त प्राणों मे देवाधिदेव श्री प्ररिहत परमात्मा की श्राज्ञा के श्रनुसार श्राराधना की भाव जागृत होता है। दान, शील, तप श्रीर भाव रूप धर्म की श्राराधना, प्रधान कर्तव्यरूप समके। ऐसी श्राराधना में लगे पुण्यशाली के प्रति श्रादर भाव प्रगट होता है। श्रीर जो सहज-मल की श्रसर में श्राकर पाप में श्रासक्त रहता है उसके प्रति करुणा तथा माध्यस्थ्य भाव जागृत होता है।

जीव के भव्यत्वभाव निमग्न परिणाम वने वहां तक मैत्री, प्रमोद, कारुण्य ग्रीर माव्यस्थ्य इन चार मे से किसी एक न एक भावता का पक्ष रहता है।

इन चार में से किसी भी एक भावना की सगित सिवाय चैन नहीं पड़ता यानि, भव्यत्वभाव विकसित हो रहा है ऐसा

And the state of t प्रक्रिका है। है। उसे प्रकार की विकास की विभागी है। में त्यान प्रमूट करूक प्राप्त कार कार के स्थाप के साथ का गां। माव मार्च प्रभाव पार्व र र र ता है तथा वर्षा पार्व गावि तो गा है।

'मजे: व' याति होति हा गरामण्या का ही ए लगरप यात वन रहे हैं ऐसा धारात, तम समय माने ते

मोरे-के किसी भी जीत के भाग को हैस पहुँके ऐसी मृत्ति मा प्रमृत्ति के मान भगतामात का वित्त महत्त्व गरी होता । जहां ऐसी प्रवृति का जोर मानूम दे गहा सहजमन क जोर निशेष है ऐसा मानना परेगा।

किसी भी जीत के कपाय में निमित्त भूत बनना यह महुन मल का तक्षामा है।

भव्यत्वभाव तो जीत की, जिनराज की श्राज्ञा में है। जीव के हित की बात की तरफ ने जाता है।

एंजिन के साथ लगा िब्बा पटरी से उतर जाता है सारी गाड़ी को घनका लगता है, वैसे श्री नवकार के साथ हुया मन, सह्जमल को श्रच्छी लगे ऐसी श्रन्यायी वृत्ति के जुड़ता है यानि प्राराधक के जीवन को भूकंप के धक्के तरह घक्का लगता है।

पर को कवाय के परिणाम लगे ऐसी अधम वृत्ति के अध

रानं नहीं नरता, विस्वहित के भाव सिवाय, प्राना िं नहीं होता।

भरने हिन की सावना से निस्वहिन की सावना जराओं भिन्न नहीं है ऐसी समक 'नमो अस्तिंताएा' पर के मना ज" में ही पुर होती है। नयोंकि जिसके द्वारा निस्त के जीते गा जिसके की वर्षी वर्ष को आरोगना के प्रभाव से आरोगक निस्त कि होता है।

'नमो श्ररिहताएां' पद की श्रात्महितकर शक्ति मे श्रपने की श्रद्धा वैठती है।

एक ग्रात्मा जब किसी दूसरे की शरण मे जाने को तैयार होती है तब वह दूसरे किसी के पंजे से छूटने के लिए छटपटाता है यह निश्चित है।

जीवमात्र को शत्रु के पंजे से छूट कर मित्र की संगित में जाना अच्छा लगता है।

'नमो श्रिरहंतारा' पद के जाप से हम सर्व पापों के मूल रूप सहजमल के पंजे से छूट कर समस्त जीवों के परम उपकारी श्री श्रिरहंत परमात्मा की शरण स्वीकार करते हैं।

श्रागे-पीछे सव तरफ श्री श्ररिहंत की श्रसीम कृपा का श्रनुभव होता जाता है, वैसे वैसे सहजमल से मुक्ति होती जाती है। सहजमल से मुक्ति होती जाती है। सहजमल से मुक्ति होती मिले यानि मलीन स्वार्थ से मुक्ति होती है। श्रशुमकर्मी से मुक्ति होती है। कोघ, मान, माया श्रीर लोभ के परिणाम से 'पर' वनता है, राग श्रीर हे प के बंघ कमजोर होते हैं। इदियों के विषयों में श्रासक्त होना पशुकार्य समभा जावे। ऐसे कार्यों में श्राणों की शक्ति को खर्च करना इसमें मानव के भव का सरासर श्रपमान लगता है।

श्री श्ररिहंत परमात्मा की शरण में जाने की तत्परता परिणाम तक पहुँचे यानि सहजमल के हमले के समय स्वय दोहरे बलपूर्वक श्री श्ररिहंत के भाव तथा श्राज्ञा के समिषत हो, क्यों कि जिसके साथ के सम्बंध में स्वय श्रपना हित दीखता हो, उमसे श्रलग होना वह श्रपने ही बंग से श्रलग होने जितना दुःत जीव को होता है।

श्रयांत् श्राप्तमण के समय दोहरे वल पूर्वक झू भते वीर सुभट

ना । इस्मा तानी नाय गामा ना समा । वैमाही कामा हमी प्रतिकार पर ते !

नेसी भी परित्य परमाभा को सारण भी समाप सि है, नेसी 'नमो परितेशामा' पर की सर्वेशी पिकर समाप असता है।

जेसी रंगभातिक वारक क्षमता भी यस्तित प्रमात्मा के सर्वोच्च भाग मे हैं, वेसी ही जीच को उपयोग मे लाने की स्वाभाविक क्षमता 'नमी परिद्वतासा' पद मे हैं ।

एक जीव के श्रहित नितन करने से जगत् के समस्त जीवों के हित के भाव का अपना सम्बद्ध ट्राट जाता है और एक जीव के हित चितन से जगत् के समस्त जीगों के हित के भाव की भूमिका पर पहुँचा जा सकता है, धैसे 'नमो श्ररिहंताएां पद के जाप से तीनो काल के सब श्री श्ररिहत परमात्मा को नमस्कार हो जाता है।

श्री श्ररिहत को नमस्गार करने से उनके त्रिभुवनहित्वित-कत्व को नमस्कार होता है।

उत्तम पुरुष को किया गया नमस्कार, अधम के तिरस्कार में परिएामता है।

श्रवम जैसे सहजमल को तथा उसके विषय-कपायादि परिवार को कभी भी नमन नहीं करना पड़े, ऐसा भाव 'नमो श्रिरहताएं' बोलते समय श्रपने हृदय में रहना चाहिए-जागृत होना चाहिए।

श्री श्रिरहंत को नमरकार करने से सहजमल की ताकत कम होती है। श्री श्रिरहत को नमस्कार करने का परिणाम अगट होना, मतलब हे कि सहजमत की ताकत कम हो रही है। परिणाम मे नमरकार का गाव होता है वहा तक कपाय का सम्बध उसके साथ हो नहीं सकता। दुर्गित के योग्य कमिणुश्रों की ताकत भी वहा जाकर ठड़ी हो जाती है, शिथिल हो जाती है।

सहजमल जीव का कट्टर शत्रु है, श्री अरिहत जीव के परम मित्र है, ऐसे सम्यग्ज्ञान के वाद जीव के प्रति अपने भाव में जरा भी फर्क पड़े यानि श्राराधक श्रात्मा सतर्क वन जाता है। पूरे भावपूर्वक श्री श्रिरहत को याद करे, श्री प्ररिहंत की श्राज्ञा के श्रनुसार एकाग्रता से स्वाध्याय करे, चारो गित के जीवों की कल्यागा की भावना भावे, श्रपने दुष्कृत्य की खूब-खूव गहीं (निंदा) करे, गुरावान श्रात्माश्रो के गुराों की भूरि-भूरि श्रनुमोदना करे।

सावना मार्ग मे ऐसी सावधानी ग्रनिवार्य है।

साच्य के प्रति इस प्रकार के भाव के वाद साधक को यह सब बोभ रूप नहीं, परन्तु सहायरूप लगता है।

भन्यत्वभाव की चादनी मे रमण करने र्का धन्य अवसर जिसको मिलता हे वह आत्मा सहजमल की, भाव प्राणो की भुलसाने वाली अग्नि के वीच एक क्षण भी नहीं वैठ सरता '

'नमो प्ररिहताए।' पद झात्म प्रदेशों की मूलभूत कार्ति की प्रगट करता है। वहां भलभलते तेज में समाविष्ट होने की अनुपम कला के जाताओं का यह स्पष्ट अनुभव है कि— 'उस घन्य घडों में शिवपद के सुख का स्वाद चखने को मिलता है।

त्रम् पत्मा के एए क्रियाम में भी त्रमी मामर्प F1377 7 3

नहीं।

तम किर पारमा ने एम सामार्ग-भाग नेमार नी वित् मित गरमे याने भी मार्गा ज स्थरमा परते सम्पत्सारे भाव में हमतो अप ते पति में ननाने ताने मन्त्र कि प्रति मनुष्य को रोती है जानी भी काजा। रोना पाहिंग कि नहीं

होनी नाहिए।

वह ग्राज हमारे में बरावर सटकती है पा। ?

पूरी तरह नही परन्तु साधारमा प्रमामा मे भी नहीं, ऐसी तो नही कहा जा सकता।

कृतज्ञता का रपर्यं, पूरिएमा की नांदनी के स्पर्यं जैसा होना चाहिए।

उसका प्रमाण के साथ मम्बघ नहीं होता।

प्रमाण का गणित भीतिक पदार्थों ने मे र लाता है।

प्रगट हुम्रा सद्गुए। सद्गुए।' ही कहा जाता है, पीछे उसकी मुल्याकन करना ठी क नहीं।

देवाधिदेव को तारकता के स्वीकारस्य इतज्ञता के स्पर्ग के बाद उसे नमने की किया के रूप मे जी रस पैद। होता ह बह अवर्णनोय है।

. पर को पहिचानने को तोव दृष्टि ही भन्यत्वभाव हैं।

उसका तेज कम होता है सहजमल के स्पर्श से, स्वार्थ के वादल से।

अपनो इच्छित यस्तु खराव होती है उसका जितना दुह सामान्य मनुष्य को होता है, कम से कम उतना दु:ख, आराध को आत्मभाव कषाय से दूपित हो तब हो और यदि न हो हो उसे आत्मा के प्रति भाव है ऐसा मुश्किल से ही कहा ज सकता है।

श्रो ग्ररिहंत के प्रति सच्चा भाव जागृत हो तव हो <sup>जीव</sup> के प्रति भाव जगता है ।

श्री श्रिरहत के प्रति भाव जगता है यानि विश्व के साथ जीव का सम्बद्य होता है।

उस भाव सम्बन्ध मे अन्तराय आवे यानि—वानी है वाहर निकली हुई मछली जैसे तड़फती है वैसे—आराधक आन्मा अनाथता का अनुभव करता है।

श्री ग्रिरहंत हमारे नाथ है ऐसे दृढ़ विश्वास के पींडे स्वाम मे भी श्री ग्रिरहत की कृपा का सगीत सुनाई देता है। श्रीर जव उस कृपा की ग्रिविंट्य शक्ति से भी ज्यादा ग्रिप ग्रियक प्रयक्त हो तब उसे सहजमल की हलवल शुरू होते विश्वास होता है।

श्रात्मा को परमात्मा श्रीर जगत् के समस्त जीवी श्रलग रखने का काम सहजमल करता है।

सहजमल की श्रोर रुभाव होने से भव जरूर बढता है। जब कि श्री श्ररिहत का शरण—तीनो लोक की <sup>†</sup> विवेकी श्रात्मा-हमेशा ग्रुभ की इच्छा करती है।

श्री श्ररिहत की शरण में लाने का जोश 'नमी' पर मगट होता है।

को क्या कर तेम क्या कर के के किया कर तेम के किया कर के क को को कर कर कर कर के किया कर की किया कर की क समाम के सम्मान कर कर कर कर की किया कर की किया

ंस्मा स्वीति स्वीति स्वाति । विकास स्वीति स्वीति स्वीति ।

'नमो गरितं ॥ए' राषी भी गरितं । नी प्राज्ञा को विशिष्ट स्त्रीकार करना ।

'नमो परित्नामा' चर्गा। यान परिगाम वद, बागर श्री यरित्त परमात्मा की मर्जीच भावना को सीकार करता।

'नमो अस्टितासा' अर्था (श्री अस्टित की त्रिभुतन क्षेमक्ष भावदया के सम्पत्ति होना ।

'नमो श्रिन्तिग्ए' पद के जाप के समय विश्वनस्ति श्री श्रित्तिं परमात्मा का भाव मेरे पर तरस रहा है श्रीर्में उसमे स्नान कर रहा हूँ ऐसी भावना श्राराधक की होती चाहिए।

जीव के सहजमलरूपी दाशु का नाश करना यह 'तमी श्ररिहताएा' पद का स्वमाव है। ऐसे सिद्धस्वभावी पद में अपने श्रापको समिपत करना यह विना कुछ छोये, कभी नहीं समाह हो ऐसा श्रक्षय सुख प्राप्त करने की श्राध्यात्मिक सावना है।

अरिहंत को नमन किये विना मृत्यु को नहीं नमाया जा सकता। जन्म को जीता नहीं जा सकता। बुढापे की जर्जरित नहीं किया जा सकता। आपत्तियों की लांघा नहीं जा सकता।

वह जोश में होता है तब पाप करने का मन होता है। सत्कार्य की बात सुनना बुरी लगती है। पांची इंद्रियों है विषयों को भोगने और कपाय को गोद में खिलाने की तीर लालसा होती है।

समग्र जीवन में उत्कापात मचाने वाले सहजमत को मृत् से उलाड़ देने वाले श्रीनवकार को जो भाग्यशाली जितने भाग्न पूर्वक नमस्कार करता है उतने प्रमागा में वह अपनी ग्राला का हित कर सकता है। श्रात्मा के हित में सबका हित है गर बात उसे स्पष्ट समभ में श्राती है।

सहजमल को कुकाये विना, श्रपने उपकारियो को न<sup>मने</sup> का परिग्णाम पूरी तरह प्रकट नहीं होता।

गहजमल जीव मात का कट्टर शतु होने के कारण जी जीवने में. जीवमात का मित्र बना जा मकता है. शी मित्री राज्ञाग बना जा सकता है।

नमी प्रस्तितामा पर का जाप क्वामोच्छ्ताम मे जिलि रजमातिक लगा है यानि ब्रह्मर्थ के प्रदेश में मना नार रुपई देगा है। नाए प्रदेश में तेल निक्ताने का अनुभा हो। रेपण प्रमाण हमा हा बमा रोमाच जिल्ला का (क्रि) रेपण हाइ है। जिसका वर्णन नहीं किया जा महा हिंगी रेपण हो। ने जानिका द्वार में प्रानी है। प्रनाहा चार्क रेपण हो। प्रमाण प्रमाल मनाहर तेल मनकता हैंगे।

<sup>े</sup> १ यह । र सनुवर निमा मिरहामा प्रश १ १८९ १ में ११४५व ११ इस्ते में स्वयं स्थान

श्री पंच परमेष्ठि भगवनों के मर्वकीवित्य विवयकणार रमरण करना चाहिए।

भव्यत्वभाव के विकास के मिवाय, विकास की इंडी रसना मानो आंरा बद फर शास्त्रपाठ पढ़ने जैसी विशि वात है।

वाश्वत सुप का मूल भव्यत्वभाव है।

चालक जैसे जैसे चड़ा होता जाता है वैसे-वैसे पाठगाती जाने को उसको योग्यता बढती जाती है, वैसे भव्यत्वभा विकसित होता जाता है, वैसे-वैसे जीव की मुक्तिगमन ग्रोग्य बढ़ती जाती है।

नाम लेकर जगाने से ऊघता श्रादमी जगता है <sup>है है</sup> श्री श्ररिहंत के नाम से भाव जगते है।

श्री नवकार मे विराजमान श्री पंच परमेष्ठि भगवतो है भाव, सोई ग्रात्मा के भाव को इस तरह फक्रभोरते हैं जि तरह माता पिता ग्रपनी सतान को जगाते है।

श्री पच परमेष्ठि भगवतो के परम प्रभावक भाव मान थोडा भी चितन करने के बाद उनका नाम ग्रागधक को उनी के काम के अगभूत वनने की प्रेरणा पूरी करता है।

भाव जागे यानि विचार-वाणी श्रीर वर्तन मे उसकी सी ग्रसर दिखाई दे।

विवार भाव वाले वने। वाणी भाव वाही बने। वर्तन निर्मल भाव दाला वने ।

'पर' की 'स्व' जितनी सभाल रखने की पवित्र <sup>भा</sup> जायृत हुए भाव से पैदा होती है।

जागृति को कायम रगने के लिए तथा प्रकार की भावी भावस्यक होती है वैसे भारमभाव विषयक जागृति को काय रखने तथा विकसित करने के लिए, शास्त्रोक्त व्रत-नियमा भावस्यक हैं।

द्रव्य ग्रारोग्य जितनी ही भाव ग्रारोग्य की जाग<sup>हती,</sup> श्री नवकार के ग्राराधक को हो—होनी चाहिए।

भाव ग्रारोग्य का मूल्य वरावर समक्त मे ग्रा जाता है यानि ग्राराधक ग्रात्मा उसके (भाव के) प्रतिकूल ग्रसर करने वाले ग्राहार ग्रादि पास ग्राने से उनको स्पर्ण करने में भी धवराता है।

श्राराघना के प्रति सच्चा भाव जगता है यानि उसे खराव श्रसर हो ऐसे किसी प्रसग मे श्राराघक श्रात्मा भटकती नहीं।

विश्वहित के महाकार्य की योग्यता प्राप्त कराने वाले श्री नवकार के साथ त्रिविध सम्बन्ध के बाद, सन्वसंपत्र प्राराधक ग्रात्मा को ऐसा विचार सुनकर भी प्रत्याधात पहुँचता है, जिस विचार मे—देवाधिदेव श्री ग्रिरहत परमात्मा की सर्वजीवहितकर ग्राज्ञा ग्रीर भाव की ग्रनुमोदना के वजाय तुच्छ स्वार्थ की ग्रनुमोदना हो, कपाय की पुष्टि हो, ग्रन्याय का बहुमान हो।

श्रन्याय के बहुमान से विश्वहित का श्रपमान होता <sup>है,</sup> विश्वहितकर धर्म का श्रपमान होता है ।

उस श्रपमान का बुरा परिगाम भोगे विना, बहुमा<sup>न की</sup> योग्यता जीव मे प्रगट नहीं होती ।

जब व्यक्ति या व्यक्तियो के समूह का लक्ष्य ग्र<sup>पती</sup> यात्रता को प्रगट करने के बजाय, पदार्थों के पुंज की ग्रो<sup>र</sup>



तो मेरक, हो रेट प्रदेश र काला (स्वास्त्री) परिपर्ते के स्टार में तहानार करों की विभा<sup>ती</sup> जाते हैं।

पराने करनी निर्मित में भी नर भी उपकी सोत कि लिए पर्विम्म की पन में पोता कर मारे, की सान मृत सानी साला में सान में कि सानी साला में कि सान में कि सान में कि सान में कि सान में साम के साम कि सान की साम कि सीन सहने का साम है।

भारमा में जो कुछ है पर सन भोतानार की जारायना के प्रभाव से प्रगट होता है।

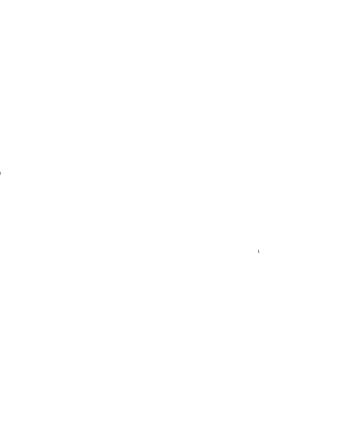
ऐसे श्री नवकार को होउकर, पात्मभान को तिरमण्ड करने वाले सहजमत को प्रणाम करना यह अपनी जन्म देने वाली माता को छोडकर घाय की गोद मे जाने जैसा है।

कन्ची नीव पर बनाया गया मकान नहुत समय तक नहीं हिकता, पवन के तेज भगादे में वह गिर जाता है, बैसे सन्ची निष्ठा सिवाय श्रीनवकार के साथ श्रपना सम्बन्ध, एक—दो श्रन्तराय श्राने के साथ ही ढोता हो जाता है श्रीर कभी तो छूट भी जाता है।

श्री नवकार के साथ सम्बन्ध यानि श्री पचपरमेष्ठि भगवत के साथ सम्बन्ध, महाकरुणा के साथ सम्बन्ध, त्रिभुन वनहितचिन्ता के साथ सम्बन्ध।

इस सम्बन्ध से जो भाव श्रपने मन मे जगते है वे भाव पवित्र होते हैं, श्रचित्य शक्तिशाली होते है।

यह भाव श्रपनी श्रात्मा मे मौजूद है। उसे परिखाम तक लाने मे श्री नवकार 'परमित्र' का काम करता है।



छोटा यानि स्वार्थ ।

वड़ा यानि परमार्थ ।

छोटा यानि विषय श्रीर कपाय।

वडा यानि वैराग्य श्रीर शुभ भाव।

जिसके साथ रहने की लगन रहती हो उसके श्रनुसार श्रपना श्रांत्रविकास हो रहा है, यह निश्चित है।

श्री नवकार को सम्पापत होने वाली श्रात्मा स्वार्य की संगति करने लायक भाग्य से ही रहती है। फिर भी यदि उसे स्वार्थ सेवन करने योग्य लगे तो श्री नवकार की सेवा में वह वरावर नहीं लगा है ऐसा ही कहना पढ़ेगा।

स्वार्य की सेवा, अंत में सहजमल की पुष्टि में परिएात होती है। सहजमल पुष्ट हो यानि 'प्रभु सेवा' के परिएगाम लगभग श्रदृश्य हो जाते हैं।

प्रभु सेवा की सच्त्री लगन श्री नवकार के समर्पित होने <sup>से</sup> प्रकट होती है।

श्री नवकार को नाथ बनाने के बाद वास्तविक मनायता प्राप्त होती है।

'श्री ग्रिन्हिंत त्रिभुवन के नाथ है, करुएा के ग्रवतार हैं' ये शास्त्र यचन ग्रपन जब श्री ग्रिन्हित को भाव से मर्मावत होते तब सी फीसदी सत्य प्रतीत होते हैं।

विना भाव के समर्पण, य्विकांश में स्थूल विषय वन जाता है:

'माय-भीड' वास्तव मे भू टी है। समस्त श्रमाय का मूल कारण भाव का श्रभाव है।

ऐसी उलटो समभ को कृतच्ना का ही एक हप कहा जा सकता है।

जिसकी कृपा को स्वीकार करने मे श्रीपचारिकता को श्रामे रखा जाता हो उसकी भिवत मे श्रपने हृदय का मम्बन्ध होना कठिन है। श्रपनी समग्रता का समारोपरा मुक्तिल है।

जीव मात्र के उपकार के स्वोकार रूप नमस्कारभाव का आराधक देवाधिदेव की कृपा में उस अक्ति का दर्शन कर सकता है, जिस अक्ति के प्रभाव से जगत् के जीवों को अन्य लगे ऐसे भयकर संयोगों के वीच भी जीवन जीने का भार रहता है।

हुपा का यह तत्त्व इतना जीवंत है कि परिशाम को नम-स्कार भाव का स्पर्ग होते ही उसके साथ प्राराधक का समान हो जाना है।

कवा यानि वसा ?

भी घरिटा परमातमा का सर्वजीविह्त विषयक सर्वित्र भारत

पर भाग लाक में हमेबा कायम रह सकता है वया ? इस र

1941 11777 /

भारत के कि अमा जा तम शा अस्ति व परमाणा के के लेद के लेपा हो अने समाम भाग प्रस्थ प्रमुद्ध होता है है के के लेद के लेपा हो अने समाम भाग प्रस्थ प्रमुद्ध का से के के के कि लेपा के मार्ग कर से का लेपा के पाल प्रमुद्ध के के के के लेपा के साहर्ष है कि का का स्मित के साहर्ष के के के के के के साहर्ष के का स्मुद्ध के साहर्ष के

श्रपनी श्रात्मा के हित की श्रोर होता है उतना हो जगत् के समस्त जीवो की तरफ होता है।

परन्तु यदि उस प्रसंग पर वह भाग्यशाली ऐसा तर्क प्रस्तुत करे कि 'किसी के ग्रहित का चितन न करना यह ग्रात्मार्थीपन का लक्ष्मण है, परन्तु हित चितन की जो बात ग्राप करते हैं वह जरा भारी श्रीर विचित्र लगती है।'

श्रहित चिंतन नहीं करने की भूमिका पर पहुँचने का एक ही राजमार्ग है, उसी का नाम सर्वजीवहितचिन्ता।

इस मार्ग पर चले विना कोई भी स्रात्मार्थी स्रहित चित्र से सर्वथा पर ऐसे सर्वोच्च हितकर परमपद का पात्र नहीं वन शीकता।

परिग्रत हुग्रा ग्रात्मभाव, जीव मात्र को ग्रपने समान देखता है, ग्रात्मतुल्यदर्शीपन कोई सावारग भावना नहीं है, परन्तु जीवत ग्रात्मभाव है। यह भाव जीव के भाव को जगाने मे सहायक होता है।

पर को भाव देना श्रीर वह भाव उस पर ग्रसर करता है या नही इस पर यथामितशक्ति चितन बाद मे, यह स्पष्ट होता जाता है कि 'विश्वऋण चुकाने का यही एक राजमार्ग है।'

दूसरे का धन नहीं लिया जाता वैसे परमात्मा के जिस
भाव के प्रभाव से हमने मानव भव प्राप्त किया उस भव मे उस
भावको उचित ऐसा धर्म—परहितचिता-न कर सके तो हम
भ्रापनी ग्रात्मा के ही नहीं, परन्तु जगत् के समस्त जीवो के ग्रीर
श्री जिनेश्वरदेव के भी द्रोही होगे।

श्रपने मिले श्रोहदे के लायक कार्य सिवाय मानव लम्बे समय तक उस श्रोहदे पर नहीं रह सकता, वैसे महापुण्य के

ित की भागना के साथ जो जो जे जनाय मान अयो मुल हैं। के विचारों के साथ धमा जेना गर क्याका भयं कर प्रणाम है। इस कुर्यमोग की अला ज माना क्यरे भग में पत्र की पात्र करता है। नियंक्त्यमित में चेंदा हो ।। है । व 'यगक्रमन' हो।। नहीं।

मन मिलने पर भी वर्तन मिला या नहीं मिला ऐसा मान्म हो तो, इससे असलीपन सिताय अस्य स्था संभव हो साहता है ?

मिली तदभी का मान भीग के मार्ग में ती दुक्तयोग करने में द्रस्द्रिता श्राती है पैने मिले मन को असे स्मार्थ की साधनी के पीछे होता दुक्तयोग ग्रमजीयन का कारण बन जाता है।

जिन पुण्यशातियों को मन के साथ उन्हें परमरक्षक श्री नवकार भी मिला है उनका कर्त्तंच्य मन को उम 'परम-रक्षक' को सीप देने का गिना जायगा।

श्रपनी माना की गोद मे वालक जितना सुरक्षित रहता है। मन का परिसाम—उतना ही सुरक्षित—श्री नवकार-माता के गोद मे रहता है।

परिणाम की पवित्रता के विषय में असावधान रहना यह दो कोलों के बीच बंधी डोरी पर चलते समय असावधान रहने जैसा है।

शुभभाव जगत् के समस्त जीवो को प्रमूल्य निधि है, ऐमा ठीक ठीक समभ में प्राने के वाद उस भाव का श्रीजिनाज्ञा के विरुद्ध कोई भी कार्य में उपयोग करने की वृत्ति मन में नहीं रहती क्योंकि श्री जिनेश्वर भगवान् की त्राज्ञा के मूल में त्रिभुवनहितकर महाकरुणा का प्रवाह वहता रहता है। अर्थात उन श्री की श्राज्ञा के प्रनुसार चलने से स्व ग्रीर पर का कल्याणा होता है।



ऐसा समभ में भारे यानि यह विशेष सामीति है। भारति है। मुरुभगां में भनि में भीत-थीर होता है।

पारमा की सर्वजोतिकार महाशिक की-दुर्भा भीर बहिमीव पाने ही सामने तूटने तमे तो महामोहिबिजेगा श्रीजिनेश्वर देव का दाम किमी भी मंगोग में महन नहीं कर सकता।

श्रात्मा के द्युम भाग में सर्वजीविद्यिक र धमता है ऐसी पूर्ण निष्ठा के बाद उसकी रक्षा कैसे करना श्रात्मार्थी को तुर्व समक्त में श्रा जाता है।

कीमती वस्तु की रक्षा कैसे करना यह प्रत्येक मनुष्य जानता है, वैसे श्रात्मा के भाय की पिवनता की किस तरह रक्षा की जा सकती है, इसका मूट्य जानने वाला पुण्यमाली जानता ही है।

श्रात्मा की श्रपेक्षा जरा भी कम उसके विशुद्ध भाव का मूल्य श्रांका जाय, तो उसको रक्षा की तरफ ग्रसाववानी रहती है श्रीर पर प्रति भाव का विशुद्ध प्रवाह उत्तरोत्तर कलुपित होता रहता है। उभके प्रभाव से वातावरण विगडता है श्रीर मानव-प्राणी को श्रनेक श्रापितयों का शिकार होने के सयोग पैदा हो जाते है।

श्रात्मभाव का प्रभाव श्रमाप है।

उसकी सर्वाजीवहितकर क्षमता ग्रचित्य है।

जसके प्रभाव से जीव का हित होता है। अतराय टूटती है, श्रापत्तिया दूर होती हैं। मगलमय वातावरण का निर्माण

नमस्कार करने में किस कोटि का समर्पण भाव जागे ? इसकी विचार बहुत जरूरी है।

इसके सिवाय अपने आचार मे श्रो श्ररिहंत की श्रात्ती का तेज फेलना बहुत कठिन हो जायगा। श्रपना नमस्कार स्थूल से सूक्ष्म भूमिका मे नही जा सकेगा। सहजमल की जह को हिलाने की उसकी शक्ति के लाभ से श्रपन बितत रह जायगे। सर्वजीवहितकर भन्यत्वभाव के विकास का मीसम् रूप मानव भव स्थर्थ चला जायगा।

देवाधिदेव श्री श्ररिहत को श्रपना नाथ स्वीकार करने वाली श्रात्मा उनके सर्वजीवहितविषयक सर्वोच्च भाव की शरण में जाने वाला वने !

उदय में श्राये कर्मों का श्री पंचपरमेण्डि भगवतों के श्रालंबन है बराबर सामना कर सकता है वह सत्ता में रहे कर्मों को जीहते की पानता भी प्राप्त कर सकना है।

कमें की सत्ता से भी धर्म की सत्ता बहुत बड़ी है।

धर्म यानि श्री श्ररिहत परमात्मा का सर्वजीवहितविष्य सर्वोचभाव। श्री सिद्ध भगवंतो का स्वाभाविक अनुप्रही श्री श्राचार्य, उपाच्याय श्रीर साधु भगवत ग्रप्रमत्तता से जिनकी श्राराधना कर रहे हैं।

'स्व' का 'सर्वा' के साथ का सम्वध जो विशुद्ध ग्रात्मभा<sup>इ</sup> है वही धर्म।

धर्म श्रयति महाकरुणा । धर्म श्रयति भावदया ।

पर के प्रति दया का जो भाव उत्पन्न होता है वह ग्रा<sup>त्म</sup> का ग्रात्म प्रति का हो भाव होता है।

ऐसे भाव के साथ का सम्वव वह धर्म का सम्बंध।

ऐसे भाव में स्थिर रहा जा सके यानि धर्मध्यान में स्थिरत श्रा रही है ऐसा कहा जा सकता है।

धर्म ग्रयीत् ग्रात्मसमभाव ।

ग्रपने (ग्रात्मा का) भाव मे जो स्वयं ग्रपना स्वान देखता है नीसा ही स्थान जगत् के समस्त जोवो को दे सकती है यानि 'ग्रात्मसमभाव' ग्राया कहा जाता है।

नमस्कार से घर्म के साथ सम्बद्य होता है ग्रीर उस<sup>में से</sup> ग्रात्मभाव प्रगट हाता है।

चलना श्रयीत् मार्ग के साथ सम्बद्ध ।



्रात्र किया करत्य राष्ट्राचा वास्ता पर गा ४० उपयोग में विकेट ग्रेजिंद स्थाननो ४ विष्याचेष्ट्री सा पहुरत्र राप्टेव

भगने तो, माना घरार मिला। मलज मन मिना। पूरे प्राण् मिला। द्यानिदे ति भागन मिला। प्रभाराज्ञावारी सामु भगवात मिले। श्री जिन-देश और तारक लीव भिले। ज्ञान के प्रभुर ग्रंथ मिले। ज्ञा ग्रंथों का नवनीत चरानि वाले व्याख्याता भगवन्त मिले। ज्ञारम के पाठ पढ़ानेवाले स्वधर्मी व्यु मिले। ज्ञाम पर्वे के श्रनुपम दिन मिले। घर्म के मीसमह्य पर्यु प्रण् पर्वे मिला। धर्मकार्य के लिए ज्ञाम क्षेत्र मिली। धर्मकार्य में लिए ज्ञाम क्षेत्र मिली। धर्मकार्य में सहयोग देने वाले धर्म बन्ध्र मिले।

तरने को फरमाया है। भाग निना कि तिया या तिया कि भाव को प्रभुशासन में स्थान न मिनने का कारण भी देवाविते की करणा ही है।

नात्य अपना परमात्मभान है।

नमस्कार की निया हारा उन भायों के साथ अपने भाव जोडने है।

जोडने से पिचाव उत्पन्न होता है।

यह खिचाव उत्पन्न हुवा है या नहीं इसका पता अपने परिगाम सहजभाव से किसे प्रगाम करते हैं, इससे पता वल जाता है।

लगभग समतल दिखाई देती जमीन का ढाल किस दिशा की ओर है यह मालूम करने के लिए समभदार आदमी उम जमीन पर आधा गिलास पानी गिराता है और उसे उस टाल की दिशा का पता चल जाता है, शैसे परिएगम किसकी प्रणाम करता है वह, नमस्कारभाव साथ के मम्बन्य से तय किया जा सकता है।

पानी जिस दिशा में बहने लगता है उस दिशा में जमीन का ढाल है यह निश्चित हो जाता है गैसे श्री नवकार गिनते समय मन किस दिशा में दौड़ता है उस पर से हम परिगाम के ढाल को जान सकते हैं।

यदि वह 'सवं' के बजाय 'स्व' तरफ जाता हो तो समर्क लेना कि अन्दर सहजमल अधिक है, और यदि वह तुरत श्री पंचपरमेष्ठि भगवत के भाव का अंगमूत वन जाता हो तो समक लेना कि आत्मा का असल भाव प्रगट हो रहा है।



ا د شرن

मानामी क का राजार हे प्रामा भारती है। वास्त्रीत्र में प्रतिमात् तका, तथा के विशेषा नमागार 7771

पन भी गाती - ता में नमता हो है।

पनियों के गान में भी मगरता चीर भावतींग ्राहरी पस्ती नमस्तार करते समय पान-पत्र के भागी नमरकार करते है या सपनी है अकी साकत की ? यह विवार

पत्न पानग्य ह है।

इन्दा प्रणीत् गहनमन की भाग ।

'पर' को देने भीर तर बद ही जातो है।

प्रमानी माता को देस कर बासक विसीना फेक देता है जीने श्री जिन प्रतिमा को देशकर कर सत्र जात जजात छो उकर वहा भाग जाना यानि कहा जा सकता है कि प्रभुजों की तारकता में प्रपना विश्वास हुढ हुमा है।

प्रभुजी के साथ जुड़ा मन, प्रभुजी की प्राज्ञा के प्रनुसार काम में लग जाता है।

जगत् के सर्व जीवों के हित की मावना के साथ प्रविक हढता से जुटने वाला प्रभुजी की प्राज्ञानुमार कार्यी की सिर्फ अपने हित के कार्यों की तरह स्वीकार करता है यह प्रभुजी की श्राज्ञा में रहे सर्वजीवहितकर भाव को बहुत ही सीमित करने की तरह है।

नोक लगने जितान दु ख अपनी नमग्रता का अनुभव नहीं करे तो मानना चाहिए कि अपने परिगाम पशुभाव के नमर्थक हैं। अभुभाव से अपन वहत दूर है।

प्रभु की जो कांति है उसके एक वार के दर्जंन के वाद, जगत के मुन्दर से मुन्दर माने जाने वाला मानव, प्राणी या पदार्थ का सीदर्य ग्राखो को ग्राकिपत नहीं कर सकता नीने प्रभु के भाव सम्बधी बहुत-बहुत चितन-मनन के बाद 'पशुभाव' ग्रपने परिणाम में कलकलाहट पैदा नहीं कर सकता, तथा ग्रपने प्राणों को ग्रपनी दिया में नहीं लेजा सकता।

नख-शिख में नमस्कार का मंकार फैनता है यानि रात की गोद में सोई हुई वनश्री सूर्य के तेज के स्पर्श से नाव उठती है, बीसे खून के वृंद वृंद में ग्रनोखी भनभनाहट श्रीर श्रपूर्व पवित्रता प्रगट होती है श्रीर मन तो पूरिएमा के चांद की तरह हंसने लगता है।

इस पवित्रता में पवन को पवित्र बनाने की शक्ति होती है। इस हंसी में चांदनी की तरह शीतलता होती है।

स्वय जिसे अपना अंगभूत माने उसे नुकसान हो यानि स्वय को ही हानि हुई हो जितना दु.ख मानव वंघु को होता है।

फिर चाहे वह साधारण वस्तु हो या वड़ा मकान।

जिसमे स्वय अपने को देखता है उसे मानो अपनेपन का ज्ञान न हो उतना ही भाव मानत देने को प्रेरित होता है।

ये सब नमस्कार के ही प्रकार हैं।

श्री श्ररिहत परमात्मा को भावतूर्धिक नमस्कार करने से, स्वय उन श्री के भाव के अगभूत बनता जाता है नथा सब की उम भाव के श्रगभूत जैसा देगता है।

सर्वं के हित की भाजना के साज सम्बंध कर रहे है, ऐसे भगती को क्षरा भर भी भूत जावे तो यह उर्जा गिनी जायकी कृतघनता गिनी जायगी।

प्रपने परिणाम किनको नमस्कार कर रहे हैं तसम्बर्ग पूरी जागरकता प्रत्येक प्राराचक में होनी नाहिए।

रग का एक करण पानी को अपना बना लेता है यानि वह पानी, पानीरूप मे पहिनानने के बदले, गुनाबी, लाल बा बादल के रंग के नाम से जाना जाता है तथा पीने के पानी के रूप मे उसका उपयोग नहीं हो सकता बेसे अपनेपन के विचा का रग, आत्मा के विद्युद्ध परिगाम की सर्वजीवहितकर धमत को बहुत मद कर देता है।

त्रात्मा के विद्युद्ध परिगाम को सिर्फ ग्राने विचार से रंगि यह महा प्रपराध है, विञ्वद्रोह है, विश्वपति की ग्राज्ञा व भंयकर प्रवहेलना है।

आत्मा के विशुद्ध परिणाम को सिर्फ अपना मानना व धर्म या प्रभु को सिर्फ अपना मानने के समान है।

पवन श्रीर प्रकाश के प्रभाव से वातावरण की नमी दूर। जाती है वैसे नमस्कार के प्रभाव से परिखाम के भीतर 'ग्रपनेपन' की नमी दूर हो जाती है।

दर्पण को छोटासा भी दाग लग जाता है यानि पर का पू प्रतिबिंद देखने को क्षमता कु ठित हो जाती है, वैसे परिण को अपनेपन के विचार का थोड़ासा भी रग लग जाता है या उसमे पर को प्रवेश करने की जगह नहीं रहती।

यत्र की सहायता के विना ऊपर नहीं चढने वाला पार सूर्य या ग्राग्न के ताप से गरम होता है उसके साथ भाप रूप



नियमो को पानि किन्नो हला विषय, विद्याति है। भाषना के साथ सम्बत मती हो सफा।

निपार, नामो भीर नर्तन से सम्पंति। शास्त्रोक्त निम् भग होते है मानि भारापना रागभग शासीरिक किया के समा बनती जाती है।

> माहार दोपवाता नही तिया जाय। वाणी दोपवाती नही बोतो जाय। विचार दोपवाते नही बनाये जाँय।

यह सब—ग्राराघना के लिए इतना ही जररी है जितन जररी जीने के लिये स्वासोच्छवास ।

ग्रपूर्व नमस्कार के लिए सामग्री भी श्रपूर्व चाहिए। श्रपूर्व यानि बहुमूल्यवान हो ऐसा नही, परन्तु पवित्र भी प्रेरक हो। ति १० ल सहेताति । र भाग तिमा भी स्पाप माथा मनता मण्ना ता महने के फारम्, माशा जैसे वै मर्ममृण हो। जा ता है तेस तिमे उसका जगा के समस्त जी के प्रतिभाग, भाषा मार्थक होया जाता है।

िमीन सर का तत्मी कि मान मानम होता है, जब किना भाग का सम्मा सारे जिते के मान होता है, श्रामुक्त कि मान होता है, श्रीम महमश्री का कि मान होता है। श्रीम महमश्री का कि जिले से बने प्रात के मान होता है। श्रीम जीव भी जैसे जैसे कंचा श्राता है शैन शेम जमन् के सब जीवों के मान उमका भान-सम्बन श्रविक सित्रम होता जाता है। स्थूल प्रकार की सित्रमता से प्रियता से प्रावक भावविषयक सित्रमता बहुत ही सूदम होती है। श्रीर वह तथा प्रकार की भूमिका के योग से सिद्ध की जी सकती है।

श्राख वद हो तो पास का पदार्थ भी नही देखा जा सकता,

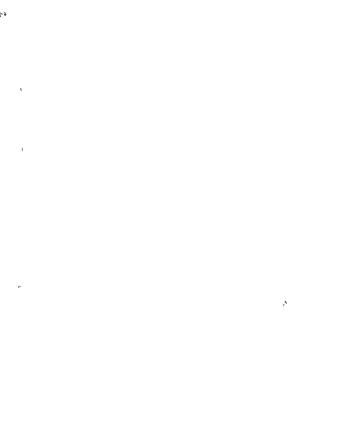
्रा र कही (र केड प्राप्त का किसी है। किसी है।

्यातिक द्वारा निष्टाक त्री तित्याक्षा प्रोतीः रहेगा प्रकार क्षाच्या प्राप्ता प्राप्ता साथ स्थास मा नहीं रहेको में।

भी मिरिता को नमस्कार करने से स्वीति के दित्त है भाषना के साथ सन्वय होता है भीर मोला की पापना प्रणट हो पहा तक सान्कता। अपने साथ रहती है, जनस्य क होने जाते हैं। और जो आते हुए सहुसव होते हैं ने भी प्रि कास में सुभने दोवक की ज्योन की तरह मद होते हैं।

विश्वमान निपरीन संयोगों से अपूर्व नमस्तार के उल्लास सिवाम, प्रभुभाव की तरफ रहने का कार्य, नहुन से भाग्यशाली श्रात्माश्रों को भी, बड़ा कठिन मानूम होता है उनसे यह निकर्ष निकाला जा सकता है कि श्राज का वातावरण बहुत भारी वन रहा है। इसमें जगत् के कल्याण की भावना के स्वर के बजाय 'मारना' श्रोर 'मरना' के भयानक स्वर गुनाई दे रहे हैं मानों मानवी का समग्र श्रातर्भाव वातावरण में स्थित न हुंगा हो ऐसा श्रनुभव भी कभी हो जाता है।

अत.करण सुघरने पर ही वातावरण मुघरता है इस सत्य



प्रपने को प्रथमी कहताना पत्छा नहीं तमे यह बात अह मोदनीय है; परन्तु यदि वह मौतिक वृत्ति हो तो, कल्पना नहीं।

जिसका मूल गहरा हो वह वृत्ति।

कल्पना क्षासिक होती है। श्रिरयरता ही उसका स्वभाव है। भ्रव्यवसायरूप वृत्ति की तथा प्रकार की भ्रसर भ्राच<sup>रण्</sup> तक फैलती है।

ग्रर्थात् जिस भाग्यशाली की वृत्ति ग्रवने को 'ग्रवर्मी' क्हलाने की नहीं श्रीर श्राचरण कम कर करता हो तब भी घ्येय तो सर्वजीवहितकर घम का हो होता है। "ग्राचरण करने लायक जैसा तो धर्म ही है"। ऐसी यावाज उसके परिणाम मे होती है।

धर्म का श्राचरण करना यानि श्रधर्म के श्राज तक के सम्बंघ के बघन को त्रिविच प्रकार से छोड़ना है।

मैत्रीभावना के द्वारा कोव को जीतना वह धर्म। प्रमोदभावना द्वारा मान को जीतना वह धर्म। करुणाभावना द्वारा माया को जीतना वह धर्म। माध्यस्थ्य भावना द्वारा लोभ को जीतना वह धर्म।

श्रपने प्रति के राग के त्याग द्वारा पर के प्रति के द्वेप की निर्मूल करना वह घर्म।

इन चारो भावनाय्रो के उत्कृष्टतम शिखर पर श्री ग्रिरिहत परमात्मा विराजमान है। ऐसे भ्रनत श्री ग्ररिहंत भगगत को नमने का श्रनुपम योग श्री नवकार को नमने से सिद्ध होता है। इसीलिए मन को श्रोनवकार को भावपूर्वक सुपुरं करने



and the second of the second of the second

त्रात्रात्वाः । वेत्रेश्वाः । प्रतार आवशे। त्रात्रात्वाः त्रोत्वोः । स्थानको समार स्वास्त्रात्वाः त्राचे सोहे ।

गर्भार विषय नाग्या हो तो विषय को 'गार्थी नहलाने को नहीं को स्मान्य कम कर करा। हो मांभी क्षेप सो गाँकी मांभी को सो गाँकी को किए को सो गाँकी के साम के लेखा हो हो है। 'भा का मांभी के लेखा हो हो है। 'भा को मांभी हो है। 'भा को मांभी हो है। 'भा को मांभी हो है। 'भा की को हो है।

् घर्म का धानरण करना यानि अधर्म के प्राज तक के सम्बंध के बंधन को त्रिविध प्रकार से मौज़ना है ।

मैत्रीभावना के हारा कोन को जीतना वह धर्म ।

प्रमोदभावना द्वारा मान को जीतना वह धर्म ।

करुसाभावना द्वारा माया को जीतना वह धर्म ।

माध्यस्य्य भावना द्वारा लोभ को जीतना वह धर्म।

श्रपने प्रति के राग के त्याग द्वारा पर के प्रति के हें प की निर्मुल करना वह घर्म।

इन चारो भावनाग्रो के उत्कृष्टतम शिखर पर श्री ग्रिहिंत परमात्मा विराजमान है। ऐसे श्रनत श्री श्रित्हत भगवत को नमने का श्रनुपम योग श्री नवकार को नमने से सिद्ध होता है। इसीलिए मन को श्रीनवकार को भावपूर्वक सुपुर्द करने

माना कामण याति परिसाध को द्वारा, गाति हर समान

जा मध्येश करने को यथती श्रीक के प्रभान से देशा की निरम् मरोपन के पेदे तक प्रकृतकर असकी शृशा में मत्यक बन मिटे, लेग या मश्रद्या में अनुभनाट प्येश करने की अपनी श्रमुणम श्रकार की शक्ति के प्रमाग से श्री नवकार, मने के

मूल सक पहुँव कर उसके झुंडि हरण का महाकार्य करता है। पारे जितना शुद्ध हुमा जल भी कीनए के संवर्ग से मलीव हो जाता है और शुद्ध परिस्थाम भी सराव—मञुभ विचार से

सपवित्र बन जाते है।

हिंगमी देशम को किया हो तहर साने मन को विगः । नारती है कि नहीं ?

हा, पह भी नतती है।

उस निया को रोके विना उसमें 'रा' के स्थान पर 'सं को नाना जितना कार्य करते समय अपने को कीन्से संगीत रोकने बाते हैं ?

'संयोग प्रतिकृत है' ऐसा विचार कर वेठे रहने मात्र से वह प्रमुक्त नहीं हो सकता।

सब के सानुकूल बनने के भाव से ही संयोगों की प्रितं व्यालता को रोका जा सकता है।

सब के सानुकूल बनने के भाव ही नमस्कारभाव हैं।

पर के प्रतिकूल नहीं बना जाय तो कोई प्रतिकूलता स्व की नहीं रोकती। प्रथवा ऐसा भी कहा जा सकता है कि सर्वजीवों के हित को भाव देने की वृत्ति से जिसकी प्रवृत्तिया रगी हुई हैं, उसे सानुकूल होने के लिए तीन जगत् के विवेकी ग्रात्मा सदी तरपर रहते हैं।

'पर' के प्रतिकूल होना यह सहजमल का स्वभाव है। 'सर्व' के सानुकूल होना यह भन्यत्यभाव का स्वभाव है।

समस्त प्रतिकूल संयोगों का मूल है—सर्वजीवहितविष्यक युभभावना का श्रभाव।

जीवों को भाव देने में संयोगों के नाम पर जितना प्रमाद किया जाता है वह सब जीव के विकास में रुकावट <sup>पैदा</sup> करता है।

जिनकी शांतर्चेतना मे जापृति सूचक सहज ही हलवल

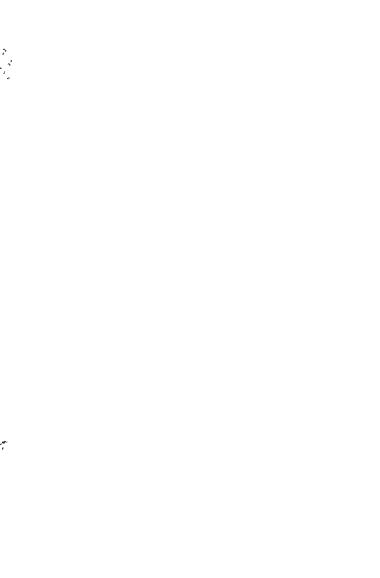
. ११ १८ १ माने पारिक्ष मिनामें है। · ··· · · II of fire to of TE नार तें म कि तो मगण जो भाग ल्यम में उठते हैं ह

भी मिना को भाग भी नेतागर की प्रणाम करते ग एउव में जागू । होता अतिहास

य भाव जागृत न हो वहा तक नमस्कार स्रीतिश तिया रण हो रहेता है।

र्भून निया का यूध्म मन की हलनता पर साम श्रमर नहीं पर्वती । श्रीर बाद थो जे बहुत पर्वती भी है तो वह भी थोडे समय में तुम हो जाती है।

मन को पीछे रराकर स्त्री नवकार से सम्बंध जोड़ना यह श्रपने परम उपकारी पुरुष के सामने पीठ करके खडे रहने के समान है।





्मोरकार कर्जा उच्चाता अथा व आहे आहे. सरका भवतिक जाह के दूज के क्या के देश पूर्व के उक्तनुक्ता मगर् के झताना गरांची (स्वता) के

महत्वम और धारम ह नगरन (जन हमा इनक अरम्भर ज स्राविष कार रम ज ्राप्या हर्मा कि अको महाग्राहरन ज सार्पानिक स्मार है जिन्ना स्नुन न्योक्या अस्ता।

प्रामा म पनुभाव का पश्तीन विकास करते ।। महाम विकास करते ।। महाम विकास को जरह तथा वातर से, प्राम तथा पाद म मगावित होने से पूज उपका प्रांतिय शक्ति के प्रांतिय को उपकार के प्रश्नी के प्रश्नीम तथा की प्रश्नीम जम्म को स्वास्त की प्रश्नीम जो स्वास्त की प्रश्नीम जो स्वास्त की प्रश्नीम जो से की प्रश्नीम जो

प्रमास है। द्योदासा एक वादती दासमर में स्वत का जन में बदत देतों है अववा शुष्क प्रदेश में जत प्रवाह फता देती है वैसे श्री नवकार का प्रत्येक ग्रदार, परिसाम का शुष्कता की ग्र<sup>पनी</sup>

परम पवित्र शक्ति से तत्काल दूर कर देता है।

परिणाम को जैसे हो श्री नवकार का प्रदार स्पर्श करता है कि तुरत समग्र प्रातर्चेतना प्रद्भुत स्पदन का प्रनुभव करती



संस्थान का साला का भाग भाग भाग । दिस राम है राजे स्वारणान्य यो नामे है और में

भेटाना चे एक सम्वास्ताना हणातिस का स्था त्यो मन मनाप तथा का विष

गिरों गरें है। मन हा ग्रह्भीमण इंटन ए उटा इह जो इ का मसा

अमग्र नहीं मिड महना। मन है बहिश्रीमण ह हारण जीव है परिणाम गर्भी के

तेज पूर्व में मुख गणे सरो (र जेंगे वनते जाते हैं। उसमें जीव हिन की विता को एक तहर भी भाग से ही उत्तन होती है ऐसे मन की हालत में अमगलकारी बन बहुत तेजी में शीनत

याता है।

जिसे कल्याए प्यारा है उसे श्री नवकार के प्रति प्या होता है।

श्री नवकार के प्रति सच्चे भाव के सिवाय, कल्याए। के कामना करना यह प्राप्त बद कर मार्ग पर चलने की अब

करने के समान उलटी चेप्टा है।



## नमेः यान

The state of the s

्र हे. राजार १४ वन्ता मा । सामारी का तात के पात । है। बस प्रकारण को प्राप्त का । उनको पत्त का का माजी देशे है। मनके वह करता का जनका प्रकान सामा !।

जाहरण का रूपात्र, ग्रंथ हे जयकार का प्र हर गरे।

ात्र हा जपहार पानि समारण ह पशुम भाका भार ।

नामिन प्रयुवना। उस जीक के अस्पर्क दिव हो द्योपे दुवें य प्रश्नक के परत का तरह । सनर फला दुवा रहता है।

प्रकाश में प्राप्तें गारी-गारी वगती द वंसे प्रशुनभा भोते परिस्साम में जीवन भाररूप वन जाता है।

अशुभभाव यानी प्रहित का भाव !

कोई प्रपने घर में कड़ा इकट्ठा नहीं करता तो फिर बाहर का कूड़ा अदर लाने की वात तो हास्यास्पद हा ठहरेगी!



1,63

पनु के नार तक है जाने तह तो नहार को नन उसा सोप दिया जाय पानी परिमाम की नृद्धि यानी जाणी वर्षेड्यान किसे कहना पहुंचा हुन स्पष्टना से समक प्राता है।

इस परिएाम और तत्समानी ज्यान में समरसता क अनुभव हो ऐसी समतल जमोन पर फेरी प्रकाश में प्रक देराते हैं।

वहा नहीं होता स्न प्रति राग, पर प्रति द्वेप।

'म्रात्मा की म्रात्ममस्ती' ऐसे नाम से जिसे बहुत भा पहिचानते हे तथा पहिचाने जाते हे उसका वास्तविक प्रमुभव उस समय होता है।

श्रीन की गर्मी में जिस तरह स्वर्ण शुद्ध होता है उसी तरह श्री नवकार के जाप की गर्मी में परिस्णाम विशुद्ध होते हैं।

स्वर्ण का दुकड़ा ग्राग्न के ठीक वीच मे रखा जाता है यानी उसे फीरन ही ग्राग्न की गर्मी का स्पर्श होता है, वैसे जाप मे मन ठीक श्री नवकार मे रहता है यानी उसकी ग्रशुढ़ि दूर होने लगती है, तथा ज्ञानावरणीयादि द्रव्य कर्मों की उस पर श्राक्रमण करने की शक्ति कमजोर होने लगती है। ग्रथवा उन द्रव्य कर्मों के ग्राक्रमण के सामने स्थिरता से रहने की उसकी शक्ति श्रधिक शुद्ध ग्रीर स्थिर होने लगती है।

जिसे जिस विषय में रस होता है उसमें वह एकाय वन सकता है, उस एकाग्रता से व्यान उत्पन्न होता है।

च्यान ग्राना तब कहा जाता है जब स्वय उस विषय में पूर्णं रूप से ग्रोतप्रोत हो जाय, प्रयवा वह उस विषय के बजाय

्राम् । ज्यानाः प्रतासः सामाः सामाः सामाः मितार है जाप मुपने वितार में भा नाम जा वही धार्त भान मंत्रीत का गमग असोत होता है उस

इ.स.चमे जानपरायम्। यहमात्राः को अता है। धर्मे का जो स्वभाव है उसका अगडी हरसा धर्मच्यान भगाव में अनुभव होता है।

सर्वात् जिसके परिसाम में पनिवता प्रगट होती है उसे समस्त जीवो को प्रात्मतुल्यभाग देने के तिए प्रयत्न करने की जरूरत नहीं होती, परन्तु वह, उस माव ही भूमिका में ही स्थिर हो जाता है।

नम-१६ अलह मात । अन् ।

त्रिभुयनपति को नमस्तार हो जाता है।

नहीं होते ।

साथ मन जुउता है।

पहिचानने लगता है।

पनुपन्ताम का भारत मा वा वावा ।

सायल्य जाम का प्रणाम करन का भार कमन ही ही त ह सहजा महित हर । महो नमन हस्ते हे ऊने परिणाम प्रमह

यमें को नमन करने से विभुवन को प्रणाम पर्दे<sup>चता है</sup>।

प्रपने विचार से 'पर' बना जाय मानी परहितचिता है

स्वय पर को पहिचानने लग जाय उसी तरह धर्म की

प्रभु के भाव सिवाय पर प्रति भाव नही जगते।

विमान मन रम्बा भी वमस्तार कर उप भवा वा ले

· · Th · · · ttritain i . Till and a property of the Th

भ हनाया प्राप्ता वाष्ट्रमाता । । । । युग्नारी

छ प्रमासामा है। इसर हरत हो नेसान नी

THE !

भे वानी जिन्हे भार 6 थी। तेप प्रभार में परंगे हे पर

की भावना को साथ ह बनाती है।

वर्मात्मा के हृदय में विश्व होता है। धर्मात्मा जिनेश्वर का स्मरण करता है।

भाविक प्रभाव ।

माधुरत्मातम् रहेन इ उप वा वा की ववाय शकि।

यमं पानी स (हमेपुक्त जारमा है मर्वेडिन भा। हा स्वी

उस धर्म के माब जाउने वाले श्री नव हार हो दिया जात भाव, जीवमात्र के हिन की भाव देने की भाग्यशाली ब्रात्मान्नी



교는 어떻게 했다. 그 그는 다 그들이 내가 들었다는 그는 사람이 그는 것 같아. 그는 것 같아. 그는 것 같아. राना चे वरेना ।

मानी सोनवतार निष्याचार, पंचारिता प्रतरे ॥

तन्तु वंगी परिवास हा इस्ता गंसी है। त्रमान तात्रवा, राजातीया तका (प्राज्याती

मुख्य, न्यान्तरमार को स्वयस्ता क्रियास र मार्गी ल नोन्य अन्तरे।

वर्मी अल्ला अधिकांत्र में भी ए ही रहती है। वाहर ताने हो पुनि प्रार्थिक विहास में स्वार्थ अवी

है, इसकी पढ़ प्रकृति (रह जानला है)। उम ही नमला अभी ह हो है।

श्रीनवकार के सरणामत हो नम्नता का पाठ पढ़ाना पड़े

यह हस को तंरना सिलाने जंसी बेहबी बात है।

देव फ्रीर गुरु की कुपा को सदेन अपने आगे - पीर्ध राहर

वह चनता फिरता है।

स्वव्यक्तित्व के विकास करते समय भी प्रधिक नाव उसना देवाचिदेव के परमतारक शासन की प्रनावना की नरक

रहता है। वासन की प्रभावना के लिए खर्च होने वाल द्रव्य को वह

'द्रव्य' गिनता है, वाकी सब उसको मिट्टी के देले की तरह लगते हैं।

पासन की प्रभावना के लिए सार्थंक होने वाले युमभाव

۲۲.

जोव के प्रति भाव कम हो यानी धर्म का प्रभाव भी कम होगा।

जीव के प्रति के भाव के प्रभाव से श्रीजिनेश्वरदेव की भक्ति में सच्चा भाव प्रगट होता है।

जीव के प्रति के भाव का प्रमृत श्री जिनेश्वरदेव की सच्ची पहिचान के वाद प्राप्त होता है ।

श्री जिनेश्वरदेव की सच्ची पहिचान के लिए श्रीनवकार को समफना होगा। अतःकरण सीपना पडेगा।

उसे विश्वहृदय की धड़कन सुनाई देती है। धर्म की शक्ति का श्रींचत्य प्रभाव क्या है यह उसे बरावर समक्ष मे प्राता है। धर्म का प्रभाव यानी सर्वजीवदिनविषयक क्षत्र भाव की

जो प्रवना हृदय श्रीनवकार के सगीत मे लगा सकता है

धर्म का प्रभाव यानी सर्वाजीवहितविषयक शुभ भाव का प्रभाव। यह शुभ भाव हवा-पानी से भी प्रविक स्लभ है। उसके

प्रभाव से जीव जीवन जी सकते हैं। वह सूक्ष्मतम होने से पृथ्वी, पानी, ग्रानि, वायु ग्रीर

श्राकाश पर उसका प्रभुत्व है। उस धर्म के हो प्रभाव से प्रत्येक परमाण स्वभाव में

उस घम के हा प्रभाव से प्रत्येक परमाणु स्वभाव र रहता है।

श्रीन, वायु श्रादि में ग्रभाव सहारं भें शक्ति होने पर भी शुभभाव के प्रभाव से वे सब श्रपनी - श्रपनी मर्यादा में रहते हैं।

वायु उर्व्वागमन नहीं कर सकता यह वर्म का ही प्रभाव है।
प्राग्न तीच्छांगमन नहीं करती यह वर्म का प्रभाव है।



्षम् काभागः सामास्ताः ५ वरन्तु । स्यान्<sup>भिक</sup> उत्तानाः केसारं सम्बद्धाः स्वानाः क्षाः व्यान्धः नमस्कारभागं स्थानाः स्थलनं तुप्तरतो है।

प्रभुको नगरकार नहीं करना वह कृतानना है।
प्रभुको नगरकार करना यह कृताना है।
कृतवनता नगरकारभागे दूर होती है।

प्रयात् ऐसा कहा जा सकता है कि शीपनगरमेष्ठि भगवतीं को निवित्र भावपूर्वक नमस्कार करना गह धर्म प्रोर नमस्कार नहीं करना वह प्रधमें है। जो विचार, वाणी ग्रोर व्यवहार जीव को श्री जिनेस्तर

भगवान् की प्राज्ञा से प्रलग करे उसे 'प्रधर्म' कहेंगे। जो विचार, वाणी ग्रीर व्यवहार जीव को प्रभु कें स्वाभाविक भावरूप धर्म से विमुख बनावे वह 'ग्रधर्म'

जो विचार, वाणी ग्रीर व्यवहार जीव को सर्वजीवहितकर शुभभाव के वजाय ससार के संगे भाई समान स्वार्व की साधना मे एकरूप बनावे वह 'ग्रधमं'।

जो विचार, वाणी ग्रीर व्यवहार से जीव, श्री बीतराग परमात्मा की ग्राज्ञा विरुद्ध प्रवृत्ति मे रसपूर्वक सम्मिलित हो वह 'श्रधमें'। सर्वजीवहितविषयक ग्रुभभाव की अपने ही स्वार्थ के लिए

विराधना करना वह 'अधमं'।



भीत का समा के जो सं कर्णा का नार नार ना यानी पभुके नावला भने के सार का उसका सम्बन्धी होता है।

पनु हे साम हा ग्रहा हा काने लेपाया मध्य भावसमित विन म पनट होती है। मण्यादि नागे चित्त में स्थिर हरने हे लिए थीन हहार हुनाथ उस मित्रता प्रति । एरं है।

शो नव हार हो मन में यह पा ग्वा पगड़ हरना है जिस प्रमाव से मन में स्थुत विचार नहीं प्राते, तिहुई मण् प्रटप लगता है, दुभाँ के स्पर्ध से विचित्तत हो जाता है।

स्वय प्रपने स्वार्थ का ज्यान करे वह प्रात्तीच्यान ।

स्वय प्रभु के भाव का ध्यान करें वह धर्मध्यान ।

धर्मच्यान में सर्भजीव हिताहर अमता है।

ब्रार्तिच्यान मे अवकार को ग्राक्षित करने की पात्रता है

'घर्मकी जय' यानी प्रभुजी के भाव की जय। प्रभुजो के भाव की जय के लिए प्रभुजी की ग्राज्ञा क

पालन ग्रनिवायं है।

प्रभुजी की स्राज्ञा के पालन से प्रभुजी के भाव की प्रभावन होती है।

'घर्म की जय' यानी जगत् के जीव मात्र के कल्याए। की

भावना को त्रिविय से माव देना है। 'वर्म की जय,' 'ग्रथर्म की पराजय' को सूचित करता है।

श्रवमंका पराजय यानी श्रवमंका मूल सहजमल की पराजय।



हरतेयदेवेत त्रवत्तवाता त्रा १।

तेन जाता है।

पनु है ना हा हाई। एक सरणान का पेस है। महमा पनु हे नमें निमान है। प्राप्त निमाह लाई है। मैसे की क्षित्रमात्म इसाम द्यान साम प्राप्त है। सब नाह्य पा मममभात को एह बताने पुहाद हरते तृष् मैं पमें हा गापह हा पालमसमभात को दिला हह हर यपने भागे ही कृति प्रो हरने हे पातान होला है तह उसहैं भीतन में 'नमें' हे पहाने हे हही सह्दिल्ला हा अपहात्

ं श्री नव हार की साथना जी मात्र हे हिंग की और प्रेरित हरती है।

प्रपनेपन के विचार के इनकार के पाये पर प्रनादि से गरें भी नमकार के प्राराधक को मन में प्रथम 'नमो' पद का साथ होता है प्रोर वहीं बनाता है कि, श्री नवकार के प्राराधक का मात्र प्रपने हितकी छोटीसी वृत्ति से निपका नहीं रहता है।

मन अन्य हिल्ला छाडाता कृति से मनाव पहा रहेता है। स्वार्थ से सम्बंध छुडाने वाते श्री नवकार मे प्रात्मा को सरमार्थपरायणभाव की पराकाष्ठा पर ते जाने की सम्पूर्ण

तरमाथपरायसभाव का पराकाष्ठा पर त जान का सम्पूस समता है।

परमार्थपरायणता से घर्म हे, तथा धर्म से परमार्थ-परायणता है।

धर्मात्मा स्वायांच हो ऐसा नहीं हो सकता, तथा जो स्वार्थांघ हो वह सच्चा धर्मप्रेमी हो ऐसा भाग्य से हो होता है

धर्म की पहिचान हो यानी स्वार्थ के साथ का सम्बध बद करने की वृत्ति परिएाम मे प्रगट होती है।

वरण्युम्य विस्तितम् स्व स्व १३ That the orest first a hot of the े हेंचे अपरेश्वेट स्वित्ताता स्टब्स्ट हरा प्रा रता वाचनात है। इस उत्सार कार्य पहले वास्तान क राजन ला र्वण्डात नार्वाण गरनाम राह प्रस्तिक भागा भारतार नहां। भारतार न प्रसार करता है को चान क्षित्र को आसाना के पनाक्रत अगद्देश वृत्तित परिमास को पति त्या में अस्तुत मुद्रि करना है। ित्य तथा विवस्तिमाम पीता भीति हो तथहते भीते

ं भेग विस्ति हाला हा

ोड़ ॥ है। उसे अपनिता और अन्याय विज्ञासय पदाये हैं। सम्बन सवानीय में ही होता है इस प्रकार निसने हा नय यह है कि जमन् के समस्त जीवों का मूल जानि ए ते से उसे मुनमात का शन करना यह मंगातीय को मच्च व देकर पर्मे की प्रभावना करने का सर्वोत्तम काम है। पैसे से सरीदी जा सके ऐसी वस्तुए श्री नवकार से माग का प्रयमान करने के वरावर है। श्री नव तार यह कोई दुकान नहीं है कि जहा जाकर गुः र या सोने-चादो की माग की जाय।

ऐसे तुच्छ पदायं मागने का मन हो जाय तो उसके नेव अतः कर्णा से पश्चाताप के ग्रासू ग्रावें तो समभना कि वकार बरावर लागू होता जा रहा है।

श्री नवकार में रहे भाव को फेलने की पात्रता के विकास के साथ मात्र श्रपने लिए श्री नवकार से कुछ भी मागते साधक इस तरह शर्माता है जिस तरह ईमानदार व्यापारी नीति विरुद्ध श्रीधक दाम लेते समय शर्माता है।

जगत् के जीवों को दिये जाने वाले भाव के वदले में भी श्री नवकार से कुछ भी नहीं मागा जा सकता। ऐसा करना सौदेवाजी गिनी जायगी। सीदेवाजी का दानवर्म के साथ कुछ भी सम्बंध नहीं होता।

वदले की श्रपेक्षा से होने वाले कार्य मे शुभभाव की चादनों दूपित हो जाती है।

श्री नवकार की सावना यानी सर्व समर्पणभाव की पात्रता के विकास के लक्ष्य की साधना।

श्री नवकार की साधना यानी पाप के मूल सहजमल सम्पूर्ण क्षय की साधना।

श्री नवकार की साधना यानी श्री ग्ररिहत परमात्मा । ग्राज्ञा के ग्रनुसार पवित्र ग्रीर ग्रश्मत्त जीवन की साधना।

परमपद की साधक ग्रात्मा, स्वार्थ के विविध विचारों वीच शाति से नहीं वैठ सकता। ग्रार्ताव्यान की ग्रसर से उसे प्राण सास रोककर मरने जैसा सचोट ग्रनुभव उसे होता है उसके ग्राचरण में नम्रता ग्रीर परोपकार को सुगद होता है

आचरण पर असर नहीं पहुँचा सके ऐसे विचार कच्चे रंग के गिने जायगे ।

परिणामगत सच्चे विचार पक्के रंग की तरह आयरण है पोत को अपना रंग लगाता ही है।



्रेनाना इतिह्याणा व्याप्ति । स्वाप्ति । चनुमारो

भी नकतार के एक एक तक न का ना गांका है, ए नाइन पान्मा के एक एक प्राम में तान का तन पास्तान पदने हैं।

स्म नाहा हो अगभूत जाने हुनिए पणन हो भाना हार का अगभूत जनना अनि गर्वे हैं। में नाहार हो अम्पिन दृष् जिना भी नाहार पणने में पूरा पराक्ष नहीं होगा।

अनुराम की जो प्रतिक्तिया है वह अनुप्रह है।

प्रवित् प्रपत्त जिलने भागू कि भी न । हार हा स्मरण करेंगे उतने प्रमाण में उसका भाग प्रपत्ते स्वभाग्य होता प्रपत्ते को प्रमुखन होगा।

उपकारी भगवतों ने श्री नवकार को चोदह पूर्व का मार कहा है वह उसके साथ महरा परिचय होने के बाद ययार्थस्प में हृदयस्य होता है।

चीदह पूर्व में जो कुछ है वह सब श्री नवकार में है इसका सचोट प्रनुभव उसकी विधि-निष्ठापूर्वक की प्राराधना के प्रभाव से प्राराधक को होता है।

देखने में छोटे से श्री नवकार का प्रत्येक प्रक्षर बहुपार्श्वांवत हीरे की तरह, साधक की ग्रात्मा के अधकार प्रज्ञान को दूर करने में ग्राचित्य सहायक होता है।

द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की उत्तमता के स्तर को कायम रखकर जो भाग्यशाली श्री नवकार की आराधना करता है उसके सम्पूर्ण मनोरथ श्री नवकार पूरे करता है।



श्री नवकार के एक एक प्रक्षर के जाप से सात सागरोपन जितने पाप क्षय होने की वात प्रपने को श्री नवकार की श्रीचत्य शक्ति का स्पष्ट ज्ञान कराती है।

मात्र 'न' या 'मो' कह कर ऐसा मान लेना कि, 'मेरे सात सागरोपम जितने पाप क्षय हो गये' यह युक्तिसगत नहीं कहीं जायगा।

ग्रपने को सारे नवकार के प्रति होता है ऐसे सच्चे भार-पूर्वक उसके वंगभूत प्रत्येक ग्रदार को भाव दिया जाता है तर हो नगरकार शास्त्र में लिसे अनुसार कल इसके सत्त्ववंत सारक को मिलता है।

'न' के उच्चारण के साथ स्वयं श्री नवकार के पूज्यतम् श्रीम को स्पर्यं कर रहा है ऐसा भाव साधक के ह्वयं में प्रमान होता है यानी तत्काल उसके सात सामरोपम जितने पाप की क्षेत्र होता है, इतने पाप का क्षयं होता है यानी उसके 'मी' 'म,' 'रि,' 'ह,' 'ता' 'ण' प्रादि प्रकार के साथ उसका समान उत्तरात्तर प्रभिक्त माम्युर्वक बाजा होता जा।। है। उस भार कंपना से बहु जम्म के जी ।। का निम्म बनता है। यहन्म के का तर निता है।

नारम का ग्रक जन जग को स्पर्य कर पाना अपका जा गुष्ठा कुन हो का स्पृथानुन के ना निकास के प्रकार के कर के बेट्ट इस इनक इन्सायोग के बेट पार्ट माल्य कर केट्ट इस इनके इन्स्योग के माल्य को क्षा के के मह का कर के के कि स्वास्त्र के अने कि साल्य को क्षा कर को

a constant on a real to the fit full fall for



र रहा रह में स्राह्म ले परिच अनिहेण्ह प्राह्म भो पार ने से प्रस्ट पर्मा हो।। है।

पर गर्रा जंसो मानासे ह महतो शो न रहार है सागह हो रोनो कार्मि । उस हे हिसो नि राग प्रदेश में प्रयंतीनवा, रीनता एक प्रस्मान नहीं दिहना सिर्म ।

योनता वानो ताचारो । उसका नम्नता के माव कोई सम्बंध नहीं होता ।

महं भाव को तुर करने वाला रसायन नम्नता है। बोनता, जीव के परिणाम को तार-तार कर देती है।

मा की गोद में बालक निश्चित रहे वैसे श्री नवकार माता की गोद में साधक निश्चित रहता है।

'मपनी चिता' यह साधक की कमजोरी गिनी जायगी।

जो स्वयं हो प्रपनी चिता का भार उठाकर चलने में समर्थ हो तो फिर श्री नवकार की शरण मे जाने का प्रश्न उठता ही नहीं।

श्री नवकार का शरण इसलिए अनिवार्य है कि अपन अपने प्रयत्नो से महामोह के गांढ वधन से नहीं छूट सकते।

स्वयं श्रकेला श्रपना ही विचार करता रहे इसमें प्रभु की वया का तिरस्कार है।

अपनी रक्षा करने वाली महाशक्ति की विद्यमानता मे स्वयं अपनी चिता की अग्नि मे भुलसता रहे यह तीव्र पापीदय की निशानी है।

पापोदय सिवाय ऐसी उलटी मित किसी को भाग्य से ही सूभती हे!

v.

# ~<sub>4</sub>,

जाय वहां तक श्री नवकार की प्रचित्य शक्ति के एक प्रश का भी भाग्य से ही सचोट अनुभव होता है।

अरवपित जैसी मानसिक मस्ती श्री नवकार के सावक को होनी चाहिए। उसके किसी विचार प्रदेश मे ग्रथंहीनता, दीनता एक क्षण भी नहीं टिकना चाहिए।

दीनता यानी लाचारी। उसका नम्नता के साथ कोई सम्बंध नहीं होता।

ग्रहं भाव को दूर करने वाला रसायन नम्नता है। दीनता, जीव के परिएाम को तार-तार कर देती है।

मां की गोद में बालक निक्चित रहे वैसे श्री नवकार माता की गोद में साधक निक्चित रहता है।

'ग्रपनी चिता' यह साधक की कमजोरी गिनी जायगी।

जो स्वयं हो श्रपनी चिता का भार उठाकर चलने में समयं हो तो फिर श्री नवकार की शरए में जाने का प्रश्न उठता ही नहीं।

श्री नवकार का शरण इसलिए ग्रनिवार्य है कि ग्रपन ग्रपने प्रयत्नों से महामोह के गांढ वधन से नहीं छूट सकते।

स्वयं श्रकेला झपना ही विचार करता रहे हसमें प्रभु की वया का तिरस्कार है।

अपनी रक्षा करने वाली महाशक्ति की विद्यमानता मे स्वयं अपनी चिंता की अग्नि मे मुलसता रहे यह तीव पापोदय की निशानी है।

पापोदय सिवाय ऐसी उलटी मित किसी की भाग्य से ही सूमती है!

जिसे थो नवकार ग्रच्छा लगता है उसे दान का विज्ञापत ग्रन्छा लगे क्या ?

जिसे थी नवकार ग्रन्छा लगता है उसे तो प्रभु ग्रन्छा लगे, प्रभु की ग्राज्ञा ग्रन्छो लगे, प्रभु को भावना ग्रन्छो लगे, मैंत्री-भाव मे ग्रानदपूर्वक भटकना ग्रन्छा लगे, प्रमोद भाव की प्याऊ पर वैठना ग्रन्छा लगे, कारुण्यभाव की गगा मे स्नान करना ग्रन्छा लगे, माध्यस्थ्य भावना के शिखर पर घूमना ग्रन्छा लगे, दान-शोल-तप ग्रीर भावरूपी धर्म की ग्राराधना ग्रन्छी लगे।

ग्रच्छे-बुरे के बीच विवेक नहीं रखा जाय तो श्री नवकार के साथ सम्बद्ध कभी पक्ता नहीं होगा। श्री नवकार का सम्बद्ध पक्का न हो बहा तक भव के बद्धन ढोले नहीं होगे। भव के बद्धन ढोले नहीं होगे। भव के बद्धन ढोले नहीं हो तो परिएाम ग्रालं व्यान ग्रीर रीद्रव्यान से पर नहीं हुआ जा सकता। ग्रालं व्यान ग्रीर रीद्रव्यान में समय व्यतीत हो यानी उसके फतस्वरूप तियँच ग्रीर नरक गति के द्रारा भोगने परे।

राजा के सम्बंधी की राजा के प्रक्तिय भी नमस्कार हरते है, वसे था नवहार के सम्बंधी की तीनों जगत् को विधे ही सातमा प्रसाम करती है।

प्रभुम क्षी के जोरदार हमते के सामने भी नव हार के माद्रा के प्रभाव प्रभव परवर है एवं में उस ह साव है है चारी तरफ का जात है यह वास्तविकता है।

निस साबना के नल पर एह साथ है जिसा मिएरल प्रथम हाम हुन त्राप हर ले उल्ली साधना के नवले में नत् साधक चार्ज कित में भूम नज़ाहा हरे फिर मो आ नन हार के एक 'न' प्रकर हा नी यह प्रनिहारी नहीं ही सहला।

जिसे थो नवकार ग्रच्छा लगता है उसे दान का विज्ञापन भ्रच्छा लगे क्या ?

जिसे थी नवकार प्रच्छा लगता है उसे तो प्रभु ग्रच्छा लगे, प्रभु की याज्ञा प्रच्छी लगे, प्रभु को भावना प्रच्छी लगे, मैत्री-भाव मे ग्रानदपूर्वक भटकना प्रच्छा लगे, प्रमोद भाव की प्याऊ पर वंडना ग्रच्छा लगे, कारुण्यभाव की गगा मे स्नान करना ग्रच्छा लगे, मान्यस्थ्य भावना के शिखर पर घूमना ग्रच्छा लगे, दान-शोल-तप ग्रीर भावरूपी घर्म की ग्राराधना ग्रच्छी लगे।

प्रच्छे-चुरे के बीच विवेक नहीं रखा जाय तो श्री नवकार के साथ सम्बद्ध कभी पक्का नहीं होगा। श्री नवकार का सम्बद्ध पक्का न हो वहा तक भव के बद्धन ढोले नहीं होगे। भव के बद्धन ढीले नहीं हो तो परिएाम श्रात्तं व्यान श्रीर रीद्रव्यान से पर नहीं हुआ जा सकता। श्रात्तं व्यान श्रीर रीद्रव्यान में समय ब्यतीत हो यानी उसके फलस्वरूप तियंच श्रीर नरक गति के दृःख भोगने पड़ें।

राजा के सम्बवी को राजा के ग्रफसर भी नमस्कार करते है, बेसे था नवकार के सम्बधी को तीनो जगत् की विवेकी ग्रात्मा प्रणाम करती है।

श्रशुभ भर्मों के जोरदार हमले के सामने श्री नवकार के सादोलन अभेदा बस्तर के रूप में उसके साधक के चारी तरफ फैल जाते हैं यह बास्तिवकता है।

जिस साघना के वल पर एक साघक चितामिएएरत श्रयम कामकुंभ प्राप्त कर ले उतनी साधना के बदले मे बहु साधक चाहे जितना घूम धड़ाका करे फिर भी थी नवकार के एक 'न' श्रवर का भी यह ध्रधिकारी नहीं हो सकता।



कार सींप देने के लक्ष्य से जिस एक एक ग्रक्षाय का जाप होता है उससे साधक के बहुत से पापो का क्षय होता है, पाप का क्षय होने से वह जगत् के जीवों को भाव देने की भूमिका के लायक वनता है। जगत् के जीवों को भाव देने की भूमिका से शास्वतपद की भूमिका पैदा होती है।

श्रयांत् श्री नवकार की विधि-निष्ठापूर्वं क की ग्राराघना से श्राराघक की मोक्ष भूख खुलती है श्रोर पापवृत्ति निमूँ ल होती है।

पाप को समूल उखाड़ने वाले विश्वप्राण श्री नवकार को नमने मे थोड़ीसी भी कंजूसी करने से पाप के जड़ तक पहुँचनें की उसके ग्रक्षर की क्षमता कुंठित हो जाती है ग्रीर ग्राराधक स्वयं श्री नवकार की प्राप्ति के बाद भी भव से पर ऐसे मोक्ष को प्राप्त करने में बहुत दूर हो जाता है।

पापकाम में पीछे हटा जाय तब ही मोक्ष मार्ग में आगे बढा जा सकता है।

मोक्षमार्गं मे श्रागे नहीं वढा जाय तो जन्म, जदा श्रीद मृत्यु को नहीं जीते जा सकते।

मृत्यु को जीतने के लिये ही शाश्वत ऐसे श्री नवकार की जीवन पर्यंत को मित्रता श्रनिवार्य है। क्योंकि श्री नवकार श्रजेय है। श्रप्रतिहत है। श्रानंदस्वरूप है।

करोड़पति भीख ें मांगता वसे श्री नवकार का धारक भी है।

ऐहित सुः प्रकार है।

असमा को सक्तान महार हा ताचा ला १८०३ छ। होता है। भागा को महा को ताचा नाता का पहल छ। भागाम भो नाम करता है हाल समान हो।

बन भार हो निद्धि पण्चनम् ७०७ सरा सता है।

जिस में निर्यापने हात लापार जान का प्रमा ची कर नकते पानी पप्ते नमकार परिमान हा रहा है पह निश्चित हो जाता है।

ऐसा नमन्कार भाग प्रवने में पनदे । उसका पानिया गाक में फैंसे । उसकी जानकारी तीनी जगा के भीनी का ता । उस जानकारी के प्रभाव में उस सबका भीनवकार की प्रमृत करती निया में प्रानद से पुमने का मनोरय जगे।

इस मनोरथ की पूर्ति के लिए सबके जीवन परमानपरायण बने । त्याग-तप और सयम की निवेणी म सब के जिबिब ताप दूर हो !

जगत् मे नमस्तार की हमेशा जय हो।

जीवमात्र के सहजमल का समूल उच्छेद हो !

प्रभुकी दया के पात्र, त्रण जगत् के जीवो के परिणाम मे प्रभुभाव का प्रवतरण हो ।

प्रभुभाव के परम प्रभाव को चिविच स्वीकार कर जगत् के जीव कृतव्नता के महापाप से पार हो!

सर्व कल्याण के महापर्व को सप्रैम ग्रामित करने वाले श्री नवकार का सब के हृदय में निवास हो।

्रामाक्ष्मा क्ष्मा क्षम । क्षमा क्षम क्ष्मा क्षमा क्

इस भाग हो लिहि, पशुर नमन छ। सारा चारा है।

्रास्ता मी रूप पान रहा। 60 पार जान हो। इसा मही कर नकते यानो पप्तीनम- लग परिमान हो रहा है पह निश्चिन हो जाना है।

ऐसा नमरहार भा। प्रवने म प्रयदे । उसका प्रकार ॥ ह में फैंसे ! उसको जानहारो सानो जगत् हे जीवी का हो। उस जानकारों के प्रभाव में उन सहका श्रीनवकार को प्रमुत फरती निया में प्रानद से त्मने का मनोर्य जगे।

इस मनोरय की पूर्ति के लिए सब हे जीवन परमानपरायस्य बने ! त्याग-तप श्रीर समम की विवेस्मी म सब हे विधिन ताप दूर हो !

जगत् मे नमस् हार की हमेशा जय हो ।

जीवमात्र के सहजमल का समूरा उच्छेद हो।

प्रभुकी दया के पात्र, त्ररा जगत् के जोवों के परिसाम में प्रभुभाव का प्रवतरसा हो !

प्रभुभाव के परम प्रभाव की चिविध स्वीकार कर जगत् के जीव कृतघ्नता के महापाप से पार हो!

सर्व कल्याण के महापर्व को सप्रेम ग्रामित करने वाले श्री नवकार का सब के हृदय में निवास हो!